समर्पण

जो दूसरों के प्रति पुष्प से भी कोमल है।
जो अपनी संयम-साधना में वज्र से भी कठोर है।

जिन का जीवन—
तपः पूत एवं पवित्र
जिन का आचार—
निर्मल एवं शुद्ध
जिन का विचार—
उज्ज्वल एवं गम्भीर
जिन की वाणी—
मधुर एवं सरस
है

अपने उन परम-पावन
परम-गुरु परम-श्रद्धेय
महास्थविर मन्त्री-प्रवर

पूज्यपाद श्रीपृथ्वीचन्द्र जी महाराज
के
चरण-कमलों में

—विजय मुनि

विषय-परिचय

परिचय-रेखा

भारत की सांस्कृतिक त्रिधारा : वैदिक, जैन और बौद्ध।

वेद, जिन और बुद्ध—भारत की परम्परा तथा भारत की संस्कृति के मूल स्रोत हैं। हिन्दू धर्म के विश्वास के अनुसार वेद ईश्वर की वाणी है। वेदों का उपदेष्टा कोई व्यक्ति विशेष नहीं था, स्वयं ईश्वर ने उनका उपदेशन किया था। अथवा वेद ऋषियों की वाणी है, ऋषियों के उपदेशों का संग्रह है। मूल में वेद तीन थे, अतः वेदत्रयी उनको कहा गया। आगे चलकर अथर्ववेद को मिला कर चार वेद हो गए। अथर्व भी स्वतंत्र वेद है। वेद की विशेष व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थ और आरण्यक ग्रन्थ हैं। यहाँ तक कर्म-काण्ड मुख्य है। उपनिषदों में ज्ञान-काण्ड की ही प्रधानता है। उपनिषद् वेदों का अन्तिम भाग होने से वेदान्त कहा जाता है। वेदों को प्रमाण मानकर स्मृति-शास्त्र तथा सूत्र-साहित्य की रचना की गई। मूल में इनके वेद होने से ही ये प्रमाणित हैं। वैदिक परम्परा का जितना भी साहित्य विस्तार है, वह सब वेद मूलक है। वेद और उसका परिवार, संस्कृत भाषा में है। अतः वैदिक संस्कृति के विचारों की अभिव्यक्ति संस्कृत भाषा के माध्यम से ही हुई।

बुद्ध की वाणी—त्रिपिटक।

बुद्ध ने अपने जीवन-काल में अपने भक्तों को जो उपदेश दिया था—त्रिपिटक उसी का संकलन है। बुद्ध की वाणी को त्रिपिटक कहा जाता है। बौद्ध परम्परा के समग्र विचार और समस्त विश्वासों का मूल त्रिपिटक है। पिटक तीन हैं—सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक। सुत्त पिटक में बुद्ध के उपदेश हैं, विनय पिटक में आचार है, और अभिधम्म पिटक में तत्त्व-विवेचन है। बौद्ध परम्परा का साहित्य भी विशाल है, परन्तु पिटकों में बौद्ध संस्कृति के विचारों का सारा सार आ जाता है। अतः बौद्ध विचारों का एवं विश्वासों का मूल ग्रन्थ—त्रिपिटक है। बुद्ध ने अपना उपदेश भगवान् महावीर की तरह उस युग की जन भाषा में दिया था। बुद्धिवादी धर्म की उस युग में, यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति थी। बुद्ध ने जिस भाषा में उपदेश दिया उसको पाली कहते हैं। अतः पिटकों की भाषा—पाली भाषा है।

महावीर की वाणी — आगम

जिन की वाणी में, जिन के उपदेश में, जिसका विश्वास है, वह जैन है। राग और द्वेष के विजेता को जिन कहते हैं। भगवान् महावीर ने राग और द्वेष पर विजय प्राप्त की थी, अत वे जिन थे, तीर्थङ्कर भी थे। तीर्थङ्कर की वाणी को जैन परम्परा में आगम कहते हैं। भगवान् महावीर के समग्र विचार और समस्त विश्वास तथा सम्पूर्ण आचारों का संग्रह जिसमें हो, उसको 'द्वादशांग-वाणी' कहते हैं। भगवान् ने अपना उपदेश उस युग की जन-भाषा में, जन बोली में, दिया था। जिस भाषा में महावीर ने अपने विश्वास, अपने विचार और अपने आचार पर प्रकाश डाला, उस भाषा को हम अर्ध-मागधी कहते हैं। अर्ध मागधी को देव-वाणी भी कहते हैं। जैन संस्कृति तथा जैन परम्परा के मूल विचारों और आचारों का मूल-स्रोत आगम-वाङ्मय है। जैन परम्परा का साहित्य बहुत विशाल है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी विराट् साहित्य लिखा गया है। परन्तु यहाँ प्रस्तुत में अन्य साहित्य की चर्चा न करके केवल आगम-साहित्य की ही विचारणा की जाएगी।

आगम-युग

वर्तमान युग के महामनीषी पण्डित सुखलाल जी ने सम्पूर्ण जैन साहित्य को पाँच कालों में, किंवा पाँच युगों में विभाजित किया है। जैसे कि—आगम युग, अनेकान्त स्थापन युग, प्रमाणशास्त्र व्यवस्था युग, नव्य न्याय युग एवं आधुनिक युग—सम्पादन एवं अनुसन्धान युग। उक्त विभाजन इतनी दीर्घ दृष्टि से किया है, कि जैन वाङ्मय का सम्पूर्ण रूप इसमें गर्भित हो जाता है। पण्डित महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य, पण्डित दलसुख मालवणिया जी और प्रोफेसर मोहनलाल मेहता ने भी अपने ग्रंथों में इस विभाजन को अपनाया है। अन्य विषयों की विचारणा प्रस्तुत न होने से, और आगम की विचारणा प्रस्तुत होने से, हम यहाँ पर मूल आगम और उसके परिवार के सम्बन्ध में, संक्षेप में विचार करेंगे।

आगम युग का काल-मान, भगवान् महावीर के निर्वाण अर्थात् विक्रम पूर्व ४७० से आरम्भ होकर प्राय एक हजार वर्ष तक जाता है। वैसे, किसी न किसी रूप में, आगम युग की परम्परा वर्तमान युग में भी चली आ रही है।

आगम-प्रणेता कौन ?

जैन परम्परा के अनुसार आगमों के प्रणेता अर्थ रूप में तीर्थकर और शब्द रूप में गणधर कहे जाते हैं। भगवान् महावीर की वाणी का सार, गणधरों ने शब्द बद्ध किया। स्वयं भगवान् ने कुछ भी नहीं लिखा। अत अर्थ, भगवान् का और सूत्र, गणधर का। उक्त कथन का फलितार्थ यह हुआ कि अर्थागम के प्रणेता तीर्थंकर होते हैं, और शब्दागम के प्रणेता गणधर। परन्तु आगमों का प्रामाण्य, गणधर कृत होने से नहीं है, अपितु तीर्थंकर की वाणी होने से है। गणधरों के सिवा स्थविर भी आगम रचना करते हैं। गणधर कृत आगमों में और स्थविर कृत आगमों में, एक बहुत बड़ा अन्तर यह रह जाता है, कि गणधर कृत आगम अंग प्रविष्ट कहे जाते हैं, और स्थविर कृत अनंग प्रविष्ट अर्थात्

अंग बाह्य कहे जाते हैं। तीर्थंकर के मुख्य शिष्य गणधर होते हैं और अन्य श्रमण जो या तो चतुर्दश पूर्वी हैं अथवा दश-पूर्वधर हैं—स्थविर होते हैं। परन्तु गणधर कृत और स्थविर कृत आगमों का आधार तीर्थंकर वाणी ही होती है। इसी आधार पर उनकी रचना प्रमाण भूत होती है। गणधर कृत आगम तो प्रमाणित होते ही हैं परन्तु स्थविर कृत आगम भी इस आधार पर प्रमाणित मान लिए गए हैं, कि चतुर्दश पूर्वी और दश-पूर्वधर नियमतः सम्यग्दृष्टि होते हैं। अतः उनके ग्रन्थ भी मूल आगमों से अविरुद्ध ही होते हैं। उक्त तर्क पर ही गणधर कृत और स्थविर कृत आगमों का प्रामाण्य जैन परम्परा को स्वीकृत है। इस दृष्टिकोण से आगम प्रणेता तीन हैं—तीर्थंकर, गणधर एवं स्थविर अर्थात् चतुर्दश पूर्वी और दश-पूर्वधर। शेष आचार्यों की कृतियों के सम्बन्ध में यह विचार है कि जो बात वीतराग वाणी के अनुकूल है वह प्रमाणित और शेष सब अप्रमाणित है।

वाचना-त्रयी

पहली वाचना—वर्तमान में उपलब्ध आगम वाङ्मय अपने प्रस्तुत रूप में देवर्धि गणि क्षमा श्रमण के युग में लिखित हुए हैं। महावीर निर्वाण के बाद में एक लम्बे दुर्भिक्ष के कारण श्रमण-संघ इधर-उधर बिखर गया था। स्थिति सुधरने पर पाटलीपुत्र में आचार्य भद्रबाहु की अध्यक्षता में श्रमण-संघ एकत्रित हुआ और समस्त श्रमणों से मिलाकर एकादश अंगों को व्यवस्थित किया। परन्तु बारहवां अंग दृष्टिवाद का विलोप अथवा विस्मरण हो चुका था।

दूसरी वाचना—मथुरा में आर्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में की गई। जो श्रमण वहाँ एकत्रित हुए थे उन्होंने एक-दूसरे से पूछकर जो स्मृति में रह सका उसके आधार पर श्रुत को संकलित करके व्यवस्थित किया गया। जैन अनुश्रुति के अनुसार लगभग इसी समय वल्लभी में भी नागार्जुन सूरि ने श्रमण-संघ को एकत्रित करके श्रुत साहित्य को व्यवस्थित करने का सत्प्रयत्न किया था।

तीसरी वाचना—वल्लभी नगर में देवर्धि गणि क्षमा-श्रमण की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। काल-दोष से और परिस्थिति वश विस्मृत श्रुत-साहित्य को फिर से संगृहीत एवं संकलित करने का श्रमणों ने प्रयत्न किया। वर्तमान में आगमों का जो रूप है, वह इसी तीसरी वाचना का अमृत-फल है। देवर्धिगणि ने उक्त संकलित श्रुत साहित्य को लिपिबद्ध भी करा लिया था। अतः इसका प्रयत्न पूर्व प्रयत्नों की अपेक्षा अधिक स्थायी रह सका और आज भी वह उपलब्ध हो रहा है—वर्तमान प्रस्तुत आगमों के रूप में।

वर्तमान काल में—धर्म दर्शन संस्कृति और आगमों की दशा देखकर, यह विचार पैदा होता है, कि क्या आज के सभी श्वेताम्बर सम्प्रदाय-मूर्तिपूजक स्थानक वासी और तेरापन्थी—मिलकर, उपलब्ध आगमों का सुन्दर सम्पादन करने के लिए एकत्रित होकर विचार नहीं कर सकते ?

आगमों की विभाजन पद्धति

पुष्प चूलिका
वृष्णि दशा
आशीविष भावना
दृष्टिविष भावना
चारण भावना
महास्वप्न भावना
तैजोऽग्नि निसर्ग

सूर्य प्रज्ञप्ति
पौरुषी मण्डल
प्रवेश मण्डल
विद्याचरण विनिश्चय
गणि विद्या
ध्यान विभक्ति
मरण विभक्ति
आत्म-विशोधि
वीतराग सूत्र
संलेखना सूत्र
विहार कल्प
चरण विधि
आतुर प्रत्याख्यान
महाप्रत्याख्यान

चार अनुयोग

१—चरण-करणानुयोग : आचार, नियम एवं विधि निषेध।
२—धर्म कथानुयोग : साधकों के जीवन चरित्र जीवन परिचय।
३—गणितानुयोग : सूर्य चन्द्र ग्रह, नक्षत्र आदि का वर्णन।
४—द्रव्यानुयोग : द्रव्य या तत्त्व का वर्णन जिसमें हो।

प्रथम विभाग में—आचारांग एवं दशवैकालिक आदि का द्वितीय विभाग में—उत्तराध्ययन उपासक दशा आदि का तृतीय विभाग में—सूर्य प्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि का और चतुर्थ विभाग में—दृष्टिवाद का समावेश होता है।

आगम

अङ्ग
- आचार
- सूत्रकृत
- स्थान
- समवाय
- भगवती
- ज्ञातृ धर्म कथा
- उपासक दशा
- अन्तकृत् दशा
- अनुत्तरोपपातिक दशा
- प्रश्न व्याकरण
- विपाक
- दृष्टिवाद (विलुप्त)

उपाङ्ग
- औपपातिक
- राज प्रश्नीय
- जीवाभिगम
- प्रज्ञापना
- सूर्य प्रज्ञप्ति
- चन्द्र प्रज्ञप्ति
- जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
- कल्पिका
- कल्पावतंसिका
- पुष्पिका
- पुष्प चूलिका
- वृष्णि दशा

मूल—
- दश वैकालिक
- उत्तराध्ययन
- आवश्यक
- पिण्ड निर्युक्ति
  अथवा
- ओघ निर्युक्ति

छेद—
- निशीथ
- महानिशीथ
- बृहत्कल्प
- व्यवहार
- दशाश्रुत स्कन्ध
- पञ्च कल्प

चूलिका सूत्र—
- नन्दी सूत्र
- अनुयोगद्वार सूत्र

प्रकीर्णक—
- चतुः शरण
- आतुर प्रत्याख्यान
- भक्त परिज्ञा
- संस्तारक
- तन्दुल वैचारिक
- चन्द्र वेध्यक
- देवेन्द्र स्तव
- गणि विद्या
- महाप्रत्याख्यान
- वीर स्तव

आगम-पुरुष :

जैन परम्परा में आगम को पुरुष की उपमा दी गई है। जैसे एक पुरुष के शरीर में अंग और उपांग होते हैं वैसे ही आगम-पुरुष के भी अंग और उपांग होते हैं। मानव शरीर में दो पाद, दो जंघाएँ, दो ऊरु, दो गात्रार्ध, दो बाहु, एक ग्रीवा और एक सिर — ये बारह अंग होते हैं, और दो कान, दो नाक, दो आँख, दो कपोल, दो हाथ और दो पाद — ये बारह उपांग होते हैं। श्रुत पुरुष में भी इसी प्रकार बारह अंग तथा बारह उपांगों की परिकल्पना की गई है। आगम-पुरुष की उक्त कल्पना में भी आगमों के विभाजन की एक पद्धति ही परिलक्षित होती है। श्रुत-पुरुष के अंग और उपांग इस प्रकार हैं—

आगम-पुरुष अथवा श्रुत-पुरुष

अंग	उपांग
आचार	औपपातिक
सूत्र कृत	राज प्रश्नीय
स्थान	जीवाभिगम
समवाय	प्रज्ञापना
भगवती	सूर्य प्रज्ञप्ति
ज्ञातृ धर्म-कथा	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
उपासक दशा	चन्द्र प्रज्ञप्ति
अन्तकृद् दशा	कल्पिका
अनुत्तरोपपातिक दशा	कल्पावतंसिका
प्रश्न व्याकरण	पुष्पिका
विपाक	पुष्प चूलिका
दृष्टिवाद (विलुप्त)	वृष्णि दशा

दृष्टिवाद

अंगों में यह बारहवाँ अंग है। परन्तु वर्तमान में यह विलुप्त है, अनुपलब्ध है। कहा जाता है कि पाटलीपुत्र की प्रथम वाचना के अवसर पर ही यह विलुप्त हो चुका था। दृष्टिवाद के पाँच विभाग हैं— परिकर्म, सूत्र, पूर्वानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। दृष्टिवाद के चतुर्थ विभाग में अर्थात् 'पूर्वगत' में चतुर्दश पूर्वों का समावेश हो जाता है। पूर्व कभी लिखे तो नहीं गए परन्तु इनके लिखने की कल्पना अवश्य की गई है। पूर्व के सम्बन्ध में दो कल्पनाएं की गई हैं। एक के अनुसार महावीर के पूर्व से ही ज्ञान-राशि का यह भाग चला आ रहा था। अतः उत्तर-काल के साहित्य सर्जन की अपेक्षा यह पूर्व कहा गया। दूसरी कल्पना के अनुसार द्वादशांगी की रचना से पूर्व ये चतुर्दश पूर्व रचे गए थे अतः इनको पूर्व कहा गया। पूर्वों में सम्पूर्ण साहित्य समा जाता है किन्तु मन्द बुद्धि के लोग उसे पढ़ने में समर्थ नहीं

थे, अत उनके लिए द्वादशागी की रचना की गई थी। आगमो मे जहाँ कहीं भी यथा प्रसग अध्ययन का वर्णन आया है, वहाँ अध्ययन के तीन क्रम दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—चतुदश पूर्वों का अध्ययन, द्वादशागी का अध्ययन तथा एकादश अगो का अध्ययन। चतुर्दश पूर्वी को शास्त्रो मे श्रुत-केवली कहा गया है। चतुर्दश पूव, ये हैं—

चतुर्दश पूर्व

उत्पाद	कर्मप्रवाद
अग्रायणीय	प्रत्याख्यान प्रवाद
वीर्य-प्रवाद	विद्यानु प्रवाद
अस्ति-नास्ति प्रवाद	अवन्ध्य
ज्ञान-प्रवाद	प्राणायु प्रवाद
सत्य-प्रवाद	क्रिया विशाल
आत्म प्रवाद	लोक बिन्दुसार

आगमों की सख्या

आगमों की सख्या कितनी है? इस विषय मे एक मत नहीं है। आगमो की सख्या के सम्बन्ध में इस प्रकार की विचारणा है—८४, ४५ और ३२। वर्तमान में मूर्ति-पूजक परम्परा में ४५ की मान्यता है, तथा स्थानकवासी परम्परा में और तेरापन्थ परम्परा मे ३२ की मान्यता है।

४५ आगम

अङ्ग—	उपाङ्ग—
आचार	औपपातिक
सूत्रकृत	राजप्रश्नीय
स्थान	जीवाभिगम
समवाय	प्रज्ञापना
भगवती	सूर्य प्रज्ञप्ति
ज्ञातृ धम-कथा	चन्द्र प्रज्ञप्ति
उपासक दशा	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
अन्तकृत दशा	कल्पिका
अनुत्तरोप पातिक दशा	कल्पावतसिका
प्रश्न व्याकरण	पुष्पिका
विपाक	पुष्प चूलिका

मूल	छेद
आवश्यक	निशीथ
दश वैकालिक	महानिशीथ
उत्तराध्ययन	बृहत्कल्प
पिण्ड निर्युक्ति	व्यवहार
अथवा	दशाश्रुत स्कन्ध
ओघ निर्युक्ति	पञ्च कल्प
चूलिका सूत्र	प्रकीर्णक
नन्दी सूत्र	आतुर प्रत्याख्यान
अनुयोग द्वार सूत्र	भक्त परिज्ञा
	तन्दुल वैचारिक
	चन्द्र वेध्यक
	देवेन्द्र स्तव
	गणि विद्या
	महाप्रत्याख्यान
	चतुः शरण
	वीर स्तव

८४ आगम

एक से लेकर पैंतालीस तक पूर्वोक्त और निम्न-लिखित मिलाकर ४ आगम होते हैं—

कल्प सूत्र	मरण समाधि
यति जीत कल्प	सिद्ध प्राभृत
श्राद्ध जीत कल्प	तीर्थोद्गार
पाक्षिक सूत्र	आराधना पताका
क्षमापना सूत्र	द्वीप सागर प्रज्ञप्ति
वंदित्तु	ज्योतिष करण्डक
ऋषि-भाषित	अङ्ग विद्या
अजीव कल्प	तिथि प्रकीर्णक
गच्छाचार	पिण्ड विशुद्धि
सारावली	आवश्यक निर्युक्ति
पर्यन्ताराधना	दश वैकालिक निर्युक्ति
जीव विभक्ति	आचाराङ्ग निर्युक्ति

कवच प्रकरण
योनि प्राभृत
अङ्ग चूलिका
वर्ग चूलिका
वृद्ध चतु शरण
जम्बू पयन्ना
व्यवहार
सूर्य प्रज्ञप्ति

सूत्रकृताग नियुक्ति
उत्तराध्ययन नियुक्ति
बृहत्कल्प नियुक्ति
दशाश्रुत स्कन्ध नियुक्ति
ऋषि-भाषित नियुक्ति
समक्त नियुक्ति
विशेपावश्यक भाष्य

३२ आगम

अङ्ग

आचार
सूत्रकृत
स्थान
समवाय
भगवती
ज्ञातृ धर्म कथा
उपासक दशा
अन्तकृत् दशा
अनुत्तरोपपातिक दशा
प्रश्न व्याकरण
विपाक

उपाङ्ग

औपपातिक
राजप्रश्नीय
जीवाभिगम
प्रज्ञापना
जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति
चन्द्र प्रज्ञप्ति
सूर्य प्रज्ञप्ति
निरयावलिका
कल्पावतंसिका
पुष्पिका
पुष्प चूलिका
वृष्णि दशा

मूल

दश वैकालिक
उत्तराध्ययन
नन्दी
अनुयोग द्वार

छेद

निशीथ
व्यवहार
बृहत्कल्प
दशाश्रुत स्कन्ध
आवश्यक

आगमों की भाषा :

आगमों की भाषा अर्ध-मागधी है। जैन अनुश्रुति के अनुसार तीर्थङ्कर अर्ध-मागधी में उपदेश करते हैं। इसको देव-वाणी भी कहा गया है। अर्ध-मागधी भाषा को बोलने वाला भाषार्य कहा जाता है। यह भाषा मगध के एक भाग में बोली जाती है इसलिए इसको अर्ध-मागधी कहते हैं। इसमें अठारह देशी भाषाओं के लक्षण मिश्रित हैं। भगवान् महावीर के शिष्य—मगध मिथिला कोशल आदि अनेक देशों के थे। अतः आगमों की भाषा में देश्य शब्दों की प्रचुरता है। जिनदासमहत्तर की व्याख्या के अनुसार मागधी और देश्य शब्दों का मिश्रण अर्ध-मागधी है। कुछ विद्वान् इसको प्राकृत भाषा भी कहते हैं।

विषय प्रतिपादन :

आगमों में धर्म दर्शन संस्कृति तत्त्व गणित ज्योतिष खगोल भूगोल इतिहास—सभी प्रकार के विषय यथाप्रसङ्ग आ जाते हैं। दश वैकालिक और आचारांग में मुख्य रूप से साधु के आचार का वर्णन है। सूत्रकृतांग में दार्शनिक विचारों का गहरा मन्थन है। स्थानांग और समवायांग में आत्मा कर्म इन्द्रिय शरीर भूगोल खगोल प्रमाण नय और निक्षेप आदि का वर्णन है। भगवती में गौतम गणधर और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तर हैं। ज्ञाता में विविध विषयों पर रूपक और दृष्टान्त हैं। उपासक दशा में दस श्रावकों के जीवन का सुन्दर वर्णन है। अन्तकृद् और अनुत्तरोपपातिक में साधकों के त्याग एवं तप का बड़ा सजीव चित्रण है। प्रश्न व्याकरण में पाँच आश्रव और पाँच संवर का सुन्दर वर्णन किया है। विपाक में कथाओं द्वारा पुण्य और पाप का फल बताया गया है। उत्तराध्ययन में अध्यात्म उपदेश दिया गया है। नन्दी में पाँच ज्ञान का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। अनुयोगद्वार में नय एवं प्रमाण का वर्णन है। छेद सूत्रों में उत्सर्ग-अपवाद का वर्णन है। राजप्रश्नीय में राजा प्रदेशी और केशीकुमार श्रमण का अध्यात्म-संवाद बड़ा सजीव सुन्दर एवं मधुर है। प्रज्ञापना में तत्त्व चिन्तन गम्भीर रूप से बहुत ही व्यवस्थित है। आगमों में सर्वत्र जीवन-स्पर्शी विचारों का प्रवाह परिलक्षित होता है।

आगमों का व्याख्या-साहित्य :

आगमों पर अनेक व्याख्याएँ हैं। कुछ प्राकृत में कुछ संस्कृत में और आगे चलकर गुजराती और हिन्दी में भी व्याख्याएँ होने लगीं। आगमों पर सब से पहली व्याख्याएँ निर्युक्ति हैं। निर्युक्तियाँ पद्यमय होती हैं। फिर भाष्य युग आया। इसमें भी पद्यमय व्याख्याएँ हुईं। निर्युक्ति और भाष्यों की भाषा प्राकृत है। आगे चलकर चूर्णि युग में प्रवेश होता है। चूर्णि भी आगमों की व्याख्याएँ हैं। परन्तु ये पद्य में न होकर गद्य में होती हैं और इनकी भाषा प्राकृत-संस्कृत मिश्रित होती है। चूर्णि युग के बाद टीका युग प्रारम्भ होता है। टीकाएँ बड़े विस्तार से होती हैं और इनकी भाषा संस्कृत है। टीकाओं के बाद में वर्तमान भाषा में टब्बा युग प्रारम्भ होता है जिसमें बहुत ही संक्षेप में आगम का अर्थ किया गया और सबसे अन्त में अनुवाद युग आया। अनुवाद युग में मूल आगमों का और टीकाओं का गुजराती तथा हिन्दी आदि भाषाओं में भाषान्तर होने लगा। यह आगमों की व्याख्या की परम्परा है।

नियुक्ति

यह आगमों पर सब से पहली और सब से प्राचीन व्याख्या है। नियुक्ति प्राकृत भाषा में और पद्य मय होती है। नियुक्तियों के प्रणेता द्वितीय भद्रबाहु माने जाते हैं। परन्तु कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं, कि नियुक्ति रचना का प्रारम्भ तो प्रथम भद्रबाहु से हो गया था। नियुक्तियों का समय विक्रम सम्वत् ४०० से ६०० तक माना गया है। इनमें—धर्म दर्शन, सस्कृति, समाज, इतिहास और विविध विषयों पर बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है। कुछ प्रसिद्ध नियुक्तियाँ ये हैं—

आवश्यक	नियुक्ति
दश वैकालिक	,,
उत्तराध्ययन	,,
आचाराग	,,
सूत्रकृताग	,,
दशाश्रुत स्कन्ध	,,
बृहत्कल्प	,,
व्यवहार	,,
ओघ	,,
पिण्ड	,,
ऋषि-भाषित	,,

भाष्य

भाष्य भी आगमो की व्याख्या है। परन्तु नियुक्ति की अपेक्षा भाष्य विस्तार मे होता है। भाष्यों की भाषा प्राकृत होती है, और ये पद्यमय होते हैं। भाष्यकारो में सघदास गणि, जिनभद्र गणि और विशाख दत्त गणि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनका समय विक्रम की सातवी शती माना गया है। सघदास गणि के बृहत्कल्प भाष्य में साधु के आचार का अति-विस्तार से वर्णन है। उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त विविध देशो का, विविध भाषाओ का, समुद्र यात्राओ का तथा विभिन्न परम्पराओ का बड़ा ही रोचक चित्रण किया गया है। जिनभद्र गणि क्षमा-श्रमण के विशेषावश्यक भाष्य मे आगम तत्त्वो का गहन-गम्भीर विवेचन किया गया है। विशेषावश्यक भाष्य का पञ्च ज्ञानवाद, गणधरवाद, और निन्हव वाद विशेष उल्लेखनीय है। विशाख दत्त गणि के निशीथ भाष्य में साधुओ के आचार, विचार, उत्सर्ग एव अपवाद का धर्म, दर्शन सस्कृति, समाज, इतिहास ज्योतिष, भूगोल एव खगोल का भी उल्लेखनीय वर्णन है। निशीथ भाष्य का सम्पादन उपाध्याय कविरत्न श्रद्धेय अमरचन्द जी महाराज और पण्डित कन्हैयालाल जी महाराज 'कमल' ने किया है, और सन्मति ज्ञानपीठ ने उसका सुन्दर प्रकाशन किया है। निशीथ भाष्य मे नियुक्ति और निशीथ-चूर्णि भी सम्मिलित है। उक्त ग्रन्थ एक आकर ग्रन्थ है, और चार भागो मे परिसमाप्त हुआ है। यह एक विशालकाय ग्रन्थ है। जैन साहित्य मे वैसे अनेक भाष्य हैं। परन्तु कुछ प्रसिद्ध भाष्य ये हैं—

विशेषावश्यक	भाष्य
बृहत्कल्प	
निशीथ	,,
व्यवहार	
दश वैकालिक	
पञ्च कल्प	,,

चूर्णि

निर्युक्ति और भाष्य की तरह चूर्णि भी आगमों की व्याख्या है। परन्तु यह पद्य में न होकर गद्य में होती है, और केवल प्राकृत में न होकर प्राकृत एवं संस्कृत दोनों में होती है। चूर्णियों का समय लगभग सातवीं-आठवीं सदी है। चूर्णिकारों में जिनदास महत्तर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका समय विक्रम की सातवीं सदी है। इन्होंने नन्दी आदि सूत्रों पर भी चूर्णि लिखी है। परन्तु इनकी निशीथ चूर्णि तो बड़े विस्तार में है। समस्त चूर्णियों में निशीथ चूर्णि सबसे अधिक महत्त्व पूर्ण है इसमें साधक जीवन का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। निशीथ-चूर्णि के बहुत-से विचार तो इतने गम्भीर और रहस्य पूर्ण हैं कि अनेक अल्प-बुद्धि एवं अल्प-मति लोग उनका भाव भी ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो पाते। किन्तु जो विद्वान् हैं, जो आगम-रहस्यज्ञ हैं वे इसके अध्ययन से परम प्रसन्न होते हैं। साधक जीवन के उतार चढ़ाव का इसमें विस्तृत वर्णन है। आचार, विचार, उत्सर्ग और अपवाद का इतना सुन्दर वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। जीतकल्प चूर्णि के प्रणेता सिद्धसेन सूरि हैं। इनका समय विक्रम की बारहवीं सदी है। बृहत्कल्प चूर्णि प्रलम्ब सूरि की रचना है। दशवैकालिक पर जिनदास महत्तर की चूर्णि तो है ही परन्तु अभी दशवैकालिक पर एक चूर्णि उपलब्ध और हुई है इसके प्रणेता अगस्त्य सूरि हैं। आगमों के विशद् विद्वान् पण्डित बेचर दास जी इसका सम्पादन कर रहे हैं। निशीथ-चूर्णि, भाष्य के साथ में सन्मति ज्ञानपीठ आगरा से प्रकाशित हो चुकी है। कुछ प्रसिद्ध चूर्णियाँ ये हैं—

आवश्यक	चूर्णि
दश वैकालिक	,,
नन्दी	,,
अनुयोग द्वार	,,
उत्तराध्ययन	,,
आचारांग	
सूत्र कृतांग	,,
निशीथ	
व्यवहार	
दशाश्रुत स्कन्ध	,,

बृहत्कल्प ,,
जीवाभिगम ,,
भगवती ,,
महानिशीथ ,,
जीत कल्प ,,
पञ्च कल्प ,,
और निर्युक्ति ,,

संस्कृत टीका

चूर्णि युग के बाद में संस्कृत टीकाओं का युग आया। संस्कृत टीकाकारों में आचार्य हरिभद्र का नाम उल्लेखनीय है। इनका समय विक्रम संवत् ७५७ से ८५७ के बीच का है। दश वैकालिक सूत्र पर इनकी एक विस्तृत टीका है। इन्होंने प्राकृत चूर्णियों के आधार से टीका की है। आगमों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों पर भी इनकी टीकाएं उपलब्ध हैं। आचार्य हरिभद्र की स्वतन्त्र कृतियाँ टीकाओं से भी अधिक हैं। धर्म, दर्शन, योग, कथा चरित्र आदि विविध विषयों पर आपके संख्या-बद्ध ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं। आप की विपुल ग्रन्थ-राशि संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में है। दोनों भाषाओं पर आपका असाधारण पाण्डित्य था। आचार्य हरिभद्र जैसे महान् ग्रन्थकार थे, वैसे ही महान् टीकाकार भी थे।

हरिभद्र के बाद में, शीलांक सूरि ने संस्कृत टीकाएँ लिखीं। आचारांग और सूत्रकृतांग पर इनकी महत्त्वपूर्ण टीकाएँ हैं। सूत्रकृतांग की टीका में, यथा प्रसंग षड्-दर्शन की विवेचना विशेष द्रष्टव्य है। भूतवाद और ब्रह्मवाद की बहुत ही गम्भीर समीक्षा की है। इनका समय विक्रम की दशवीं शती है।

शान्त्याचार्य ने उत्तराध्ययन पर अत्यन्त विस्तृत टीका लिखी है। यह टीका प्राकृत एवं संस्कृत दोनों भाषाओं में है, परन्तु प्राकृत की प्रधानता है। इसीलिए इसका नाम पाइय टीका है। उक्त टीका में धर्म और दर्शन का अति सुन्दर विवेचन हुआ है। उत्तराध्ययन पर अन्य अनेक टीकाएँ हैं, परन्तु इतनी गम्भीर और इतनी विशद अन्य कोई टीका नहीं है।

मलधारी हेमचन्द्र भी प्रसिद्ध टीकाकार हैं। इनका समय विक्रम संवत् १०७० से ११३५ तक माना गया है। इन्होंने विशेषावश्यक भाष्य पर संस्कृत वृत्ति लिखी है, जो गम्भीर और महत्त्वपूर्ण टीका है। उक्त ग्रन्थ पर कोट्याचार्य की भी एक विस्तृत टीका उपलब्ध है।

संस्कृत टीकाकारों में सबसे विशिष्ट स्थान मलयगिरि का है। मलयगिरि, वस्तुतः मलयगिरि ही हैं। इनकी टीकाओं में भाव गम्भीर, भाषा प्राञ्जल और शैली प्रौढ़ है। जिस किसी भी आगम पर अथवा ग्रन्थ पर इन्होंने टीका की, उसी में यह तन्मय हो गए। जिस प्रकार वैदिक परम्परा में वाचस्पति मिश्र ने षड् दर्शनों पर प्राञ्जल भाषा में और प्रौढ शैली में विशद टीकाएं रचकर एक आदर्श उपस्थित किया है। ठीक वही आदर्श, जैन परम्परा में मलयगिरि ने किया। दर्शन शास्त्र के तो यह विराट् विद्वान् थे। विभिन्न दर्शन-शास्त्रों का जितना गम्भीर विवेचन तथा विश्लेषण इनकी टीकाओं में हो सका है, वैसा अन्यत्र

न मिल सकेगा । मलयगिरि अपने युग के महान् विचारक महान् टीकाकार और महान् व्याख्याता थे । आगम के भावों को तर्कपूर्ण शैली में उपस्थित करने की आप में अद्भुत क्षमता योग्यता और कला थी । अतः मलयगिरि एक सफल टीकाकार थे । इनका समय विक्रम की बारहवीं सदी है ।

आगमों के टीकाकारों में अभय देव सूरि भी सुप्रसिद्ध हैं । इनका समय विक्रम संवत् १०७२ से ११३५ तक माना गया । अभय देव सूरि को नवाङ्गी वृत्तिकार कहा जाता है । अभय देव सूरि अपनी युग के एक बहु आचार्य हैं जिन्होंने नव अंग सूत्रों पर टीका लिखकर विलुप्त होते श्रुत की संरक्षा करके एक महान् कार्य किया था । इनकी टीकाएं अधिक विस्तृत नहीं हैं, मूल से अधिक भिन्न हैं । परन्तु कहीं कहीं पर गहन-गम्भीर विचार भी हो जाता है । आचार्य ने नव अंगों पर टीका लिखकर वस्तुतः महती श्रुत-सेवा की है । अंगों के अतिरिक्त कुछ उपांगों पर तथा अन्य ग्रन्थों पर भी आचार्य ने टीकाएँ की हैं । संक्षेप में आचार्य का परिचय इस प्रकार है—

राजा भोज द्वारा शासित धारा नगरी में एक महीधर सेठ था उसकी पत्नी का नाम था धनदेवी । अभय कुमार उसका पुत्र था जो बुद्धिमान्, रूपवान् और चतुर था । एक बार जिनेश्वर सूरि धारा पधारे । उनका उपदेश सुनकर अभय कुमार प्रभावित हुआ और मुनि पद पाने का संकल्प किया । आचार्य ने उसकी योग्यता परख कर दीक्षा दे दी । उसका नाम रखा —'अभय देव' । अभय देव ने गुरु चरणों में ज्ञान और चारित्र की साधना एकान्त भाव से की । मेधा धारणा और प्रतिभा की प्रखरता के कारण अभय देव ने स्वल्प समय में ही स्व पर सिद्धान्त का तलस्पर्शी अध्ययन कर लिया । शिष्य को तेजस्वी एवं यशस्वी समझकर जिनेश्वर सूरि ने अभय देव को 'सूरि' पद प्रदान किया ।

अभय देव सूरि ने अपने युग के समाज का और संघ का गम्भीर अध्ययन किया । अनेक धर्म विचार शून्य तथा आचार हीन बनकर आगमों का मनमाना मनचाहा और मनचीता अर्थ करके अपने स्वार्थों की सिद्धि में व्यस्त बना हुआ था । संघ में अनुशासन और संयम का ह्रास होता जा रहा था । शिथिलाचार लोग विधिविधाचार का नारा बुलन्द करके स्वयं हीन कोटि के आचार की दल-दल में फंस रहे थे । उनके विधिविधाचार का आधार आत्म-वञ्चना के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न था । अभयदेव सूरि ने उस आत्म-वञ्चना आत्म-छलना और आत्म-दम्भ का घोर विरोध किया और आगमों पर टीका लिखने का संकल्प किया जिससे दुर्मति लोग पवित्र आगमों को अपनी स्वार्थ सिद्धि का माध्यम न बना सकें । जैसा कि आज के वर्तमान युग में भी कुछ चन्द स्वार्थ-ग्रस्त लोग आगमों के नाम पर, प्राचीनता-वाद के नाम पर, जड़ क्रिया-काण्ड के नाम पर, स्वयं शिथिलाचार होकर भी विधिविधाचार के नाम पर —नारा लगाकर भोली जनता को पथ विचलित करने का अपकर्म कर रहे हैं । अभयदेव सूरि ने आगमोद्धार का संकल्प किया और आगमों पर सरल टीका लिखने का शुभारम्भ भी कर दिया । जैसे निशाचरों को दिवा-प्रकाश अप्रिय होता है वैसे ही स्वार्थ प्रिय लोगों ने आचार्य के इस सत्प्रयत्न का घोर विरोध किया । आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का भी एक दिन इसी प्रकार का विरोध किया गया था—अज्ञानी क्रूर पन्थी और स्वार्थ लोलुप लोगों की ओर से । परन्तु इतिहास साक्षी है कि जिनका विरोध किया गया था—वे इतिहास के पृष्ठों पर और जनता की श्रद्धामयी चेतना पर—आज भी जीवित हैं । और विरोध करने वाले स्वयं ही मिट गए, पर उनका दुर्नाम तथा अपकर्म—आज भी जन-चेतना की उपेक्षा का विषय है ।

अभयदेव सूरि के सत्प्रयत्न का आगमों के मर्मज्ञ [illegible] लोगों ने स्वागत किया। परन्तु द्रोणाचार्य ने, जो उस युग के एक महान् ज्योतिर्धर आचार्य थे—अभयदेव सूरि के साहस का अभिनन्दन ही नहीं किया, बल्कि पूर्ण सहयोग प्रदान करके, सम्पूर्ण [illegible] कर, इस कठिन कार्य को सम्पन्न भी कराया। अभयदेव सूरि ने जितनी टीकाएँ लिखी थीं, उन सब का आद्य संशोधन [illegible] और परिष्कार करके अभयदेव सूरि का साहस बढ़ाया, जिसका शुभ फल आज हम सब पा रहे हैं। श्रुत-सागर के इस छोर से, अभयदेव सूरि तथा उनके सहयोगी द्रोणाचार्य का [illegible] करने वाले, आचार्य द्वय—युग-युग तक जीवित रहने वाले प्रकाश पुञ्ज हैं, जिनकी पावन ज्योति से ज्योतित है—आज भी श्रुत-साहित्य।

दीर्घकालीन साहित्य का कठोर परिश्रम, कठोर चारित्र साधना और दीर्घकालीन आयंबिल तपस्या के कारण अभयदेव सूरि का रक्त विकार का रोग होगया था। परन्तु विरोधी लोगों ने आग को हवा दी, और कहा कि—"अभयदेव सूरि ने आगमों की अपनी मनमानी टीकाओं में जो उत्सूत्र-भाषण किया अथवा लेखन किया है, उसी के फल स्वरूप इन्हें यह कुष्ठ रोग हो गया है।" मत विरोध के कारण, मानवी मन का कितना गहरा पतन हो सकता है? इसका यह एक निदर्शन है।

इस महान् ज्योतिर्धर आचार्य अभयदेव सूरि का पाटण में स्वर्गवास हुआ। आचार्य के महान् उपकार को, उनकी महती श्रुत सेवा को कभी भुलाया नहीं जा सकता—कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। आगम-श्रद्धालु और आगम-प्रिय जन चेतना पर आज भी उस दिव्य ज्योति का नव्य-भव्य-दिव्य प्रकाश जगमगा रहा है। यहाँ पर हम एक तालिका दे रहे हैं, जिनमें अभयदेव सूरि की श्रुत-सेवा का संक्षिप्त परिचय मिल सकेगा—

ग्रन्थ नाम	रचना समय	स्थान	श्लोक परिमाण
स्थानांग वृत्ति	११२०	पाटण	१४,२५०
समवायांग वृत्ति	११२०	पाटण	३,५७५
भगवती वृत्ति	११२८	पाटण	१८,६१६
ज्ञाता सूत्र वृत्ति	११२०	पाटण	३,८००
उपासक दशा वृत्ति	०	०	८१२
अन्तकृत् दशा वृत्ति	०	०	८६६
अनुत्तरोपपातिक दशा वृत्ति	०	०	१६२
प्रश्न व्याकरण वृत्ति	०	०	४,६००
विपाक सूत्र वृत्ति	०	०	९००
औपपातिक सूत्र वृत्ति	०	०	३१२५

आगमों पर टीका करने वाले अन्य भी बहुत-से आचार्य हुए हैं, परन्तु संक्षेप के कारण हम उनका यहाँ परिचय नहीं दे पा रहे हैं।

आगमों पर टब्बा :

टीका युग की समाप्ति पर हम टब्बा युग में प्रवेश करते हैं। टब्बा भी एक प्रकार से आगमों पर संक्षिप्त टीकाएँ हैं। परन्तु यह संस्कृत युग न होकर अपभ्रंश-काल है। टब्बा में गुजराती और राजस्थानी भाषा का मिश्रण होता है। सम्भवतः इसका कारण यह प्रतीत होता है कि टब्बाकार सन्त प्रायः गुजरात और राजस्थान में ही अधिक विचरण करते थे। टब्बाकारों में पार्श्वचन्द्र और धर्मसिंह जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका समय १८ वीं शताब्दी माना गया है। टब्बा संक्षिप्त शैली में लिखे गए हैं।

आगमों का अनुवाद

टब्बा के युग के बाद अनुवाद-युग आता है। अनुवाद का अर्थ है—भाषान्तर। मूल आगमों का तथा संस्कृत टीकाओं के अनुवाद—गुजराती तथा हिन्दी—दोनों ही भाषाओं में हुए हैं। यह प्रयत्न मूर्ति-पूजक समाज की ओर से तथा स्थानकवासी समाज की ओर से बहुत पहले प्रारम्भ हो चुका है। और अब तेरापन्थ समाज भी इस प्रकार के प्रयत्न में है। बत्तीस आगमों के अनुवाद और सम्पादन की योजनाएँ वे भी बना रहे हैं और योजना को क्रियान्वित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। आगम वाङ्मय के विराट् विद्वान महामनीषी पण्डित बेचरदास जी ने अनेक आगमों का सम्पादन और गुजराती अनुवाद किए हैं, और वे समाज में बहुत लोकप्रिय भी हुए हैं। जीवाभाई पटेल ने अनेक आगमों का सुन्दर शैली में अनुवाद किया है और उन पर महत्वपूर्ण टिप्पण भी लिखे हैं जैसे कि पण्डित बेचरदास जी ने भी लिखे हैं। जीवा भाई पटेल के प्रकाशन बड़े ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। महान् विचारक और दार्शनिक विद्वान् पण्डित दलसुख मालवणिया ने स्थानांग और समवायांग का संयुक्त अनुवाद, विस्तार वर्गीकरण और महत्वपूर्ण टिप्पणों से संयुक्त अभिनव प्रकाशन किया है, जो अपनी शैली का अनूठा प्रकाशन है। सन्तबाल जी ने दशवैकालिक उत्तराध्ययन और पूर्व आचारांग का सुन्दर अनुवाद एवं संक्षिप्त सम्पादन किया है। उनके दशवैकालिक तथा उत्तराध्ययन का तो हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है। परन्तु अनुवाद के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और गौरवमय कार्य पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज ने किया है। बत्तीस आगमों का अनुवाद कर डालना कोई साधारण बात नहीं है। और यह भी आज की अपेक्षा उस साधनहीन युग में—वस्तुतः बड़ी बात है। अतः अनुवाद के क्षेत्र में उनकी प्रमुखता की योग्यता को अभी तक अन्य कोई नहीं पा सका है। स्थानकवासी समाज के लिए यह कम गौरव की बात नहीं है।

श्री मदनलाल जी मेहता ने भगवती सूत्र के ९ शतकों का सारग्राही हिन्दी अनुवाद किया है। मत और भाषा की दृष्टि से यह पुस्तक सुन्दर है। श्री रतनलाल जी डोशी द्वारा सम्पादित एवं हिन्दी भाषान्तरित उत्तराध्ययन सूत्र का प्रकाशन हुआ है। इस प्रकाशन में कुछ स्थलों पर पाठ भी शुद्ध नहीं है, और अनुवाद तो किसी भी काम का नहीं है। कहीं पर मूल से विपरीत अर्थ कर दिया गया है, और कहीं पर मूल पाठ का अर्थ किया ही नहीं गया। अनुवाद की भाषा में न कहीं पर सौष्ठव है, न कहीं पर लालित्य और न कहीं पर सुन्दरता ही है।

स्थानकवासी मुनियों की आगम सेवा

स्थानकवासी मुनियों में सर्वप्रथम सम्पूर्ण आगम साहित्य का [illegible] श्री अमोलक ऋषि जी महाराज की है। ग्यारह अंग, बारह उपांग, चार मूल, एक आवश्यक और चार छेद सूत्रों का हिन्दी अनुवाद करके आपने आगम साहित्य को सर्वसुलभ बना दिया। बत्तीस सूत्रों का हिन्दी अनुवाद करके देश भर में आगमों की व्याख्या का प्रचार करने का श्रेय आपको ही है। अपने उस युग में यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति थी। जिन लोगों ने उस समय इनकी श्रुत सेवा का विरोध किया था, आज वे और उनके अनुयायी, पूज्य श्री जी महाराज के गुण गा रहे हैं।

उपाध्याय देवचन्द्र जी महाराज ने स्थानाङ्ग सूत्र की अभयदेव टीका का गुजराती अनुवाद करके स्थानकवासी परम्परा में एक नया कदम आगे बढ़ाया।

इस दिशा में ज्योतिर्धर आचार्य पूज्य जवाहरलाल जी महाराज ने सूत्रकृताङ्ग सूत्र की शीलांकाचार्य कृत संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद कराकर संस्कृत टीकाओं का स्वाध्याय प्रचार करके एक महान् क्रान्तिकारी काम किया था। उनका सूत्रकृताङ्ग सूत्र चार भागों में सम्पूर्ण हुआ है। प्रथम भाग में मूल और टीका—दोनों का हिन्दी अनुवाद है, और बाद के तीन भागों में केवल सूत्र मात्र का अनुवाद है। आचार्य श्री की यह एक महत्वपूर्ण श्रुत सेवा है।

उस युग के पूज्य और वर्तमान में श्रमण संघ के उपाध्याय श्री हस्तीमल जी महाराज ने दश वैकालिक सूत्र की संस्कृत अवचूरि टीका का सुन्दर सम्पादन करके आज से लगभग २० वर्ष पूर्व प्रकाशन किया था। इसी प्रकार छेद सूत्रों में बृहत्कल्प सूत्र की संस्कृत टीका का सम्पादन और प्रकाशन आपने किया है। जिन संस्कृत टीकाओं का एक दिन स्थानकवासी परम्परा ने बहिष्कार किया था, हर्ष है कि उपाध्याय देवचन्द्रजी म०, पूज्य जवाहरलालजी महाराज और उपाध्याय हस्तीमलजी म० के सत्प्रयत्न से उन संस्कृत टीकाओं का स्थानकवासी परम्परा में फिर से आदर-सत्कार होने लगा। श्रुत सेवा के क्षेत्र में इन लोगों की यह एक बहुत बड़ी और साथ ही महत्वपूर्ण देन है। उपाध्याय श्री हस्तीमल जी म० ने नन्दी सूत्र का और प्रश्न-व्याकरण सूत्र का हिन्दी अनुवाद और सम्पादन भी किया है। दोनों सूत्र प्रकाशित हो चुके हैं। नन्दी का प्रकाशन तो सुन्दर है, परन्तु प्रश्न-व्याकरण का मुद्रण उतना सुन्दर नहीं है।

प्रसिद्ध वक्ता पण्डित रत्न श्री सौभाग्यमल जी म० ने आचारांग सूत्र का हिन्दी अनुवाद और हिन्दी विवेचन का प्रकाशन किया है। उक्त प्रकाशन बहुत सुन्दर है। स्वाध्याय प्रेमी जनों के लिए विशेष रूप से उपादेय है।

पण्डित रत्न श्री मिश्रीमल जी म० 'मधुकर' ने आचारांग सूत्र से चयन करके धर्म पथ, धर्म जागरण और धर्म-साधना—इन तीन पुस्तकों का सुन्दर हिन्दी अनुवाद करके प्रकाशन किया है। यह शैली भी एक सुन्दर शैली है।

परम पूज्य, आचार्य सम्राट् श्रद्धेय आत्माराम जी म० तो आगमों के एक सुप्रसिद्ध व्याख्याकार हैं। स्थानकवासी समाज के आप एक युगान्तरकारी महाव्यक्ति हैं। अनेक आगमों पर आपने विशद

व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। आपके द्वारा व्याख्यात उत्तराध्ययन सूत्र, दश वैकालिक सूत्र, अनुत्तरोपपातिक सूत्र और अनुयोग-द्वार सूत्र समाज में बहु प्रचारित एवं सर्व प्रिय प्रकाशन हैं। इनका सम्पादन ही सुन्दर नहीं है, बल्कि प्रकाशन एवं मुद्रण भी उतने ही सुन्दर तथा लोकप्रिय हैं। सम्भवतः आचार्य श्री जी म. समाज के सबसे अधिक ख्याति प्राप्त व्याख्याकार हैं। आपकी श्रुत-सेवा समाज का गौरव है, और स्थानकवासी समाज की विशेष सम्पत्ति है।

पण्डित ज्ञानमुनि जी ने विपाक सूत्र का विस्तृत हिन्दी विवेचन प्रस्तुत किया है। इसका सम्पादन, प्रकाशन और मुद्रण सुन्दर है।

स्थानकवासी परम्परा के सुप्रसिद्ध वक्ता जैन-धर्म दिवाकर श्रद्धेय चौथमल जी म. ने आगमों से सुन्दर-सुन्दर सुभाषितों का संकलन और चयन करके 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' नाम से एक सुन्दर-ग्रन्थ का संगुम्फन किया है, जो 'जैन गीता' भी कहा जा सकता है।

पण्डित रत्न पूज्य श्री घासीलाल जी म. ने बड़ी महत्त्वपूर्ण आगम सेवा की है। आपके द्वारा लगभग सब आगमों का प्रकाशन हो चुका है। आपने उन पर स्वतन्त्र रूप से संस्कृत टीका की है। स्थानकवासी परम्परा में पूज्य श्री घासीलाल जी म. सर्व प्रथम संस्कृत टीकाकार हैं। आपके द्वारा प्रस्तुत सभी आगमों का संगुम्फन, सम्पादन और प्रकाशन सुन्दर है। आप भी स्थानकवासी समाज में एक युग प्रवर्तक व्यक्ति हैं।

सन्त बाल जी ने दशवैकालिक सूत्र की और उत्तराध्ययन सूत्र की संक्षेप-छाया प्रस्तुत की है। एवं आचाराङ्ग सूत्र का गुजराती अनुवाद और तुलनात्मक टिप्पण देकर स्तुत्य श्रुत-सेवा की है।

पण्डित कन्हैयालाल जी म. 'कमल' ने चार मूल सूत्रों को एक ही पुस्तक में सम्पादित कर प्रकाशित किया है। किन्तु मुद्रण आकर्षक नहीं है।

धर्मोपदेष्टा पण्डितरत्न श्री फूलचन्द जी महाराज 'पुप्फभिक्खु' जी ने मूल बत्तीस आगमों का सम्पादन और प्रकाशन करके एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और एक बहुत ही उपादेय श्रुत-सेवा की है। श्रुत-सेवा की इस लम्बी परम्परा में आपकी यह श्रुत-सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। दो भागों में सम्पूर्ण बत्तीसी वस्तुतः एक स्मरणीय प्रकाशन है।

निशीथ सूत्र, उसका भाष्य, उसकी निर्युक्ति और उसकी चूर्णि—इन सब का एक ही पुस्तक में सुन्दर सम्पादन उपाध्याय कविरत्न श्रद्धेय अमरचन्द जी म. ने किया है और सन्मति ज्ञानपीठ से यह प्रकाशित हुआ है। ग्रन्थ का नाम 'निशीथ भाष्य' है। उक्त ग्रन्थ विशालकाय होने से चार भागों में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ के सम्पादन में पण्डित कन्हैयालाल जी 'कमल' का सहयोग रहा है। निशीथ भाष्य का और निशीथ चूर्णि का अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ था। उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द जी म. ने इसका सम्पादन करके और सन्मति ज्ञान पीठ ने इसका प्रकाशन करके आगम साहित्य के सेवा क्षेत्र में एक अद्भुत काम किया है। उपाध्याय श्री जी म. का यह सम्पादन और प्रकाशन इस युग की सबसे बड़ी घटना है, सबसे बड़ी देन है। और, यह उनके क्रान्तिकारी जीवन की सबसे बड़ी और सम्भवतः सबसे अधिक आवश्यक भी—आगम सेवा है, यह श्रुत-सेवा युग युग तक चिरस्मरणीय रहेगी। स्थानकवासी

तरह आदि भी उतने ही प्रमाण भूत तथा मान्य हैं। आचार्य कुन्द कुन्द के ग्रन्थों पर आचार्य अमृतचन्द्र ने अत्यन्त प्रौढ़ एवं गम्भीर टीकाएँ की हैं। इस प्रकार दिगम्बर साहित्य भले ही बहुत प्राचीन न हो फिर भी वह परिमाण में विशाल है, और उर्वर एवं सुन्दर है।

आगम साहित्य की परिचय रेखा :

आगम साहित्य विपुल विशाल और विराट् है, उसका पूर्ण परिचय एक लेख में नहीं दिया जा सकता। प्रस्तुत लेख में आगम और उसके परिवार की केवल परिचय रेखा ही दी गई है। यदि आगम के एक-एक अंग का पूर्ण परिचय दिया जाए, तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की ही रचना हो जाए। आवश्यकता तो इस बात की है कि आगम निर्युक्ति भाष्य चूर्णि टीका टब्बा और अनुवाद—सभी पर एक-एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की जाए, जिससे आगम साहित्य का सर्वांग परिचय जन चेतना के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सके। फिर आज तो मूल आगमों के अनुसन्धान की बहुत बड़ी आवश्यकता है। मूल आगमों में जो विभिन्न विषय आए हैं उन पर भी तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार होना चाहिए। आगमों में तथा उसके परिवार में धर्म दर्शन और संस्कृति के मूल तत्त्व भरे पड़े हैं। अभी तक आगमों का अध्ययन-अध्यापन केवल धार्मिक दृष्टि से ही होता रहा है, परन्तु अब समय आ गया है कि उनका अध्ययन और अध्यापन मनन और मन्थन—संस्कृति समाज और इतिहास की दृष्टि से भी हो। हर्ष है, कि कुछ विद्वानों का ध्यान इस विषय पर गया है, और कुछ ने तो उस प्रकार के अध्ययन ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत भी किए हैं। किन्तु इस दृष्टिकोण का व्यापक प्रचार और प्रसार होना चाहिए।

अनुत्तरोपपातिक सूत्र :

ग्यारह अंगों में यह नवम अंग सूत्र है। प्रस्तुत सूत्र में तीन वर्ग हैं और तेतीस अध्ययन हैं। प्रथम वर्ग में दश द्वितीय वर्ग में त्रयोदश और तृतीय वर्ग में दश—इस प्रकार सब मिलाकर तेतीस अध्ययन हो जाते हैं। प्रस्तुत सूत्र की भाषा सरल शैली संक्षिप्त और विषय प्रतिपादन अत्यन्त सुगम एवं सुबोध्य है। तपः पूत जीवन चरित्रों का सुन्दर मधुर और सरस चरित्र-चित्रण किया गया है। भोग वासना के दल-दल में से निकल कर त्याग-वैराग्य की पावन भूमि पर पदार्पण करने वाले साधकों के जीवन का इससे अधिक सुन्दर अन्य ग्रन्थ दुर्लभ है। उन साधकों का जीवन जिनका प्रस्तुत सूत्र में वर्णन किया है सभी राजकुमार अथवा श्रेष्ठि-पुत्र हैं। सभी साधन सम्पन्न हैं। उनके चारों ओर वैभव और विलास बिखरा पड़ा है फिर भी वे जागे उठे और कठोर साधना के दुर्गम पथ पर चलकर अपने लक्ष्य के—चरम लक्ष्य के शिखर जा पहुँचे बड़ी बात है। ये सभी ज्ञान-गर्भित वैराग्य की विमल ज्योति हैं। दिव्य प्रकाश पुञ्ज हैं

अनशन-तप और ध्यान :

प्रस्तुत सूत्र के तीनों वर्गों में अनशन रूप तप का वर्णन बड़े विस्तार के साथ में किया गया है। तीसरे वर्ग के धन्य अनगार अध्ययन में तो तपोवर्णन चरम सीमा पर पहुँच गया है। साहित्य ग्रन्थों में काव्यों में और नाटकों में मनुष्य के सौन्दर्य का नख शिख वर्णन बहुत देखा जाता है। कालिदास ने 'कुमार सम्भव' काव्य में शृङ्गारमय नख शिख वर्णन किया है। परन्तु अनुत्तरोपपातिक

समाज में ही नही, बल्कि सम्पूर्ण जैन समाज मे निशीथ और चूर्णि के सम्पादन और प्रकाशन का शानदार सत्कार हुआ है। विद्वानों ने मुक्त-कण्ठ से उक्त प्रकाशन की प्रशसा की है, और इसके प्रकाशन को आवश्यक बताया है।

पण्डित दलसुख मालवणिया जी ने निशीथ भाष्य और निशीथ चूर्णि के प्रकाशन के सम्बन्ध में, अपने एक लेख में लिखा है, जो गुजराती 'जैन प्रकाश' के १५-८-६० के अक मे प्रकाशित हुआ है। पण्डित बेचर दास जी दोशी ने भी उक्त प्रकाशन की प्रशसा की है।

इसके अतिरिक्त उपाध्याय श्री जी ने सामायिक-सूत्र और श्रमण-सूत्र पर हिन्दी मे विस्तृत भाष्य लिखा है। दोनों ग्रन्थ आगम साहित्य की सेवा में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। भाव, भाषा एव शैली-सभी दृष्टियो से उक्त दोनो प्रकाशन बहुत ही लोक प्रिय हुए हैं।

आगम प्रामाण्य के विषय मे मत-भेद

आगम प्रामाण्य के विषय मे एक मत नही है। श्वेताम्वर मूर्ति-पूजक परम्परा ११ अग १२ उपांग, ४ मूल, २ चूलिका सूत्र, ६ छेद, १० प्रकीर्णक—इस प्रकार ४५ आगमो को प्रमाण मानती है। इनके अतिरिक्त नियुक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका—इन सवको भी प्रमाण मानती है, और आगम के समान ही इनमे भी श्रद्धा रखती है।

श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा और श्वेताम्बर तेरापन्थी परम्परा केवल ११ अग, १२ उपाग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक—इस प्रकार ३२ आगमो को प्रमाण-भूत स्वीकार करती है, शेप आगमो को नही। इनके अतिरिक्त नियुक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाओ को प्रमाण भूत स्वीकार नही करती।

दिगम्बर परम्परा उक्त समस्त आगमों को अमान्य घोपित करती है। उसकी मान्यता के अनुसार ये सभी आगम लुप्त हो चुके हैं। अत वह ४५ या ३२ तथा नियुक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका—किसी को भी प्रमाण नही मानती।

दिगम्बर आगम

दिगम्बर परम्परा का विश्वास है, कि वीर निर्वाण के बाद श्रुत का क्रमश ह्रास होता गया। यहाँ तक ह्रास हुआ कि वीर निर्वाण के ६८३ वर्ष के वाद कोई भी अगधर अथवा पूर्वधर नही रहा। अग और पूर्व के अशधर कुछ आचार्य अवश्य हुए हैं। अग और पूर्व के अश ज्ञाता आचार्यो की परम्परा मे होने वाले पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यों ने पट् खण्डागम की रचना द्वितीय अग्राह्यणीय पूर्व के अश के आधार पर की और आचार्य गुणधर ने पाँचवें पूर्व ज्ञान-प्रवाद के अश के आधार पर कपाय पाहुड की रचना की। भूतबलि आचार्य ने महाबन्ध की रचना की। उक्त आगमो का विपय मुख्य रूप में जीव और कर्म है। बाद में उक्त ग्रन्थों पर आचार्य वीर सेन ने धवला और जय धवला टीकाएँ की। ये टीकाएँ भी उक्त परम्परा को मान्य हैं। दिगम्बर परम्परा का सम्पूर्ण साहित्य आचार्यों द्वारा रचित है।

आचार्य कुन्द कुन्द के प्रणीत ग्रन्थ—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि भी आगमवत् मान्य हैं,—दिगम्बर परम्परा मे। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के ग्रन्थ—गोमटसार, लब्धि सार और द्रव्य-

संग्रह आदि भी उतने ही प्रमाण-भूत तथा मान्य हैं। आचार्य कुन्द कुन्द के ग्रन्थों पर आचार्य अमृतचन्द्र ने अत्यन्त प्रौढ़ एवं गम्भीर टीकाएं की हैं। इस प्रकार दिगम्बर साहित्य भले ही बहुत प्राचीन न हो फिर भी वह परिमाण में विशाल है, और सुन्दर एवं सुन्दर है।

आगम साहित्य की परिक्रम रेखा

आगम साहित्य विपुल विशाल और विराट है, उसका पूर्ण परिचय एक लेख में नहीं दिया जा सकता। प्रस्तुत लेख में आगम और उसके परिवार की केवल परिक्रम रेखा ही दी गई है। यदि आगम के एक एक ग्रन्थ का पूर्ण परिचय दिया जाए, तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की ही रचना हो जाए। आवश्यकता तो इस बात की है कि आगम निर्युक्ति भाष्य चूर्णि टीका टब्बा और अनुवाद—सभी पर एक-एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की जाए, जिससे आगम साहित्य का सर्वांग परिचय जन चेतना के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सके। फिर आज तो मूल आगमों के अनुसन्धान की बहुत बड़ी आवश्यकता है। मूल आगमों में जो विभिन्न विषय आए हैं उन पर भी तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार होना चाहिए। आगमों में तथा उसके परिवार में धर्म दर्शन और संस्कृति के मूल तत्त्व भरे पड़े हैं। अभी तक आगमों का अध्ययन-अध्यापन केवल धार्मिक दृष्टि से ही होता रहा है, परन्तु अब समय आ गया है कि उनका अध्ययन और अध्यापन मनन और मन्थन—संस्कृति समाज और इतिहास की दृष्टि से भी हो। हर्ष है, कि कुछ विद्वानों का ध्यान इस विषय पर गया है, और कुछ ने तो इस प्रकार के अध्ययन ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत भी किए हैं। किन्तु इस दृष्टिकोण का व्यापक प्रचार और प्रसार होना चाहिए।

अनुत्तरोपपातिक सूत्र :

ग्यारह अंगों में यह नवम अङ्ग सूत्र है। प्रस्तुत सूत्र में तीन वर्ग हैं और तेतीस अध्ययन हैं। प्रथम वर्ग में दस द्वितीय वर्ग में तेरह और तृतीय वर्ग में दस—इस प्रकार सब मिलाकर तेतीस अध्ययन हो जाते हैं। प्रस्तुत सूत्र की भाषा सरल शैली संक्षिप्त और विषय प्रतिपादन अत्यन्त सुगम एवं सुबोध्य है। तप पूत जीवन चरित्रों का सुन्दर मधुर और सरस चरित्र-चित्रण किया गया है। भोग वासना के दल-दल में से निकल कर, त्याग-वैराग्य की पावन भूमि पर पदार्पण करने वाले साधकों के जीवन का इससे अधिक सुन्दर वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। उन साधकों का जीवन जिनका प्रस्तुत सूत्र में वर्णन किया है सभी राजकुमार अथवा श्रेष्ठि-पुत्र हैं। सभी साधन सम्पन्न हैं। उनके चारो ओर वैभव और विलास बिखरा पड़ा है फिर भी वे जागे उठे और कठोर साधना के दुर्गम पथ पर चलकर अपने लक्ष्य पर—चरम लक्ष्य के निकट जा पहुँचे बड़ी बात है। ये सभी ज्ञान-गर्भित वैराग्य की दिव्य ज्योति हैं। दिव्य प्रभाव पुञ्ज हैं।

अनशन-तप और ध्यान :

प्रस्तुत सूत्र के तीनो वर्गो मे अनशन रूप तप का वर्णन बड़े विस्तार के साथ में किया गया है। तीसरे वर्ग के धन्य अनगार अध्ययन में तो तपोवर्णन चरम सीमा पर पहुँच गया है। साहित्य ग्रन्थों मे काव्यों मे और गद्य चरितों में मनुष्य के सौन्दर्य का नख शिख वर्णन बहुत देखा जाता है। कालिदास ने 'कुमार सम्भव' काव्य में शृङ्गारमय नख शिख वर्णन किया है। परन्तु अनुत्तरोपपातिक

दशा के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन में धन्य अनगार की तपस्या का भी नख-शिख वर्णन किया गया है। धन्य अनगार के शरीर के समस्त अंगों का सजीव वर्णन किया है, जो अध्येता को विस्मय में डाल देता है।

शास्त्र में अन्यत्र भी तप का वर्णन बहुत मिलता है, जैसे भगवती सूत्र, दशा में। परन्तु एक बात विचार के योग्य है, कि अनशन रूप तप और ध्यान—दोनों में विशिष्ट कौन है। अनशन बाह्य तप है और ध्यान आभ्यन्तर तप है। बाह्य की अपेक्षा आभ्यन्तर विशिष्ट तो होगा ही। ध्यान भी तप तो ही है। परन्तु जैन परम्परा में जितना प्रचार अनशन रूप तप का रहा है, उतना ध्यान-योग का नहीं, जबकि वैदिक और बौद्ध परम्परा में ध्यान-योग पर अधिक बल दिया है। कर्म-क्षय में जितना प्रबल कारण ध्यान है उतना अनशन तप नहीं। अनशन तप में देह दमन की मुख्यता है, जब कि ध्यान में चित्त-वृत्तियों के शोधन पर अधिक भार दिया गया है। भगवान् महावीर जितने अधिक दीर्घ तपस्वी थे, उतने ही अधिक वे स्थिर ध्यान योगी भी थे। वस्तुत ध्यान और अनशन रूप तप, दोनों परम्पराएँ आगमों में सुरक्षित हैं। फिर भी प्रचलित परम्परा में ध्यान की अपेक्षा अनशन तप का ही अधिक आग्रह था। यह प्रश्न विद्वानों के लिए विचारणीय है।

प्रस्तुत सम्पादन की विशेषता

प्रस्तुत सूत्र का प्रकाशन आचार्य प्रवर परम श्रद्धेय आत्माराम जी म० की ओर से तथा पूज्य श्री घासीलाल जी म० की ओर से भी हो चुका है। परन्तु उनकी शैली से इसकी शैली सर्वथा भिन्न है और अद्यतन भी। इसमें मूल और मूल का मूल-स्पर्शी अनुवाद है। अभयदेव सूरिकृत संस्कृत टीका भी अलग स्वतन्त्र रूप में दे दी गई है, जिससे संस्कृतज्ञ विद्वान् तथा संस्कृत में अभिरुचि रखने वाले पाठक उससे लाभ उठा सकते हैं। संस्कृत टीका के बाद में हिन्दी टिप्पण दे दिए गए हैं। मूल सूत्र में समागत व्यक्तियों का तथा नगरों का संक्षिप्त परिचय तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से दिया गया है, जिससे आगम प्रेमियों को प्रस्तुत सूत्रगत व्यक्तियों के जीवन से सहज परिचय हो सके और उनके पावन जीवन से कुछ सद्गुण ग्रहण किए जा सकें। टिप्पणों के बाद तीन वर्गों के अलग-अलग तीन चार्ट दे दिए गए हैं, जिससे तत्-तत् अध्ययन में समागत व्यक्ति के जीवन की संक्षिप्त झाँकी मिल सके। अन्त में शब्द कोष भी दे दिया गया है, जिससे आगमों पर अनुसंधान कर्त्ताओं को विशेष सुविधा रह सकेगी तथा विशेष शब्द और पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान हो सकेगा। प्रारम्भ में मेरा लेख है,—"आगम और उसके परिवार की परिचय रेखा"—जिससे यह जाना जा सकेगा, कि आगम साहित्य का महावीर युग से आज तक कैसे विकास होता रहा है। और मूल आगमों को समझने के लिए नियुक्ति, भाष्य, चूर्णि और संस्कृत टीकाओं का अध्ययन कितना अनिवार्य है? उक्त व्याख्याओं की सर्वथा उपेक्षा करके आगम-रहस्य को जानने का और समझने का दावा सर्वथा मिथ्या होगा, कोरा दम्भ होगा।

प्रस्तुत सम्पादन की सबसे बड़ी विशेषता है—"अनुत्तरोपपातिक एक अध्ययन" प्रस्तुत लेख, आगमों के परम विद्वान् और प्राकृत तथा पालि साहित्य के विराट् विचारक पण्डित बेचरदास जी दोशी का है। यह लेख, प्रस्तुत सूत्र की भूमिका रूप है। इसमें पण्डित जी ने अत्यन्त परिश्रम किया है। गहरा चिन्तन करके पण्डित जी ने जो नवनीत जन चेतना को अर्पित किया है, उसके लिए मैं उनका

रखता हूँ। अनुत्तरोपपातिक सूत्र के प्रस्तुत लेख में बहुत ही गम्भीर चिन्तन मनन और मन्थन किया गया है। यदि प्रत्येक आगम पर इसी प्रकार से एक-एक 'विशेष अध्ययन' प्रस्तुत किया जाए, तो मेरे विचारों में आगमों की यह एक बहुत बड़ी सेवा होगी। पण्डित जी के विशाल और विशद चिन्तन में से जो कुछ विचार कण समाज ग्रहण कर सके तो यह उसका परम सौभाग्य होगा। पण्डित जी के पास समय नहीं था—क्योंकि वे आजकल आगमों पर गम्भीर चिन्तन करके एक ग्रन्थ तैयार कर रहे हैं—परन्तु समय न होने पर भी वे मेरे अनुरोध को मान गए और मेरी भावना का उन्होंने आदर किया। पण्डित जी से मैंने बहुत कुछ सीखा है और बहुत कुछ सीखने की अभिलाषा रखता हूँ। पण्डित जी के स्नेह को व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं।

पण्डित बेचरदास जी द्वारा लिखित—'अनुत्तरोपपातिक : एक अध्ययन' को पढ़ कर कुछ धर्म विरुद्ध तथा रूढ़िवादी लोग चमकेंगे और बिदकेंगे। और अपने स्वभाव के अनुसार सम्भव है गाली-गलौच का उपहार भी भेंट करेंगे। परन्तु साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार की निन्दा एवं दुरालोचना का हमारी दृष्टि में कुछ भी मूल्य नहीं है। सत्य को प्रस्तुत करने में हमें किसी व्यक्ति अथवा पक्ष का जरा भी भय नहीं है। जड़-मान्यताओं और अन्ध विश्वासों के जर्जरित दुर्ग की रक्षा कब तक की जा सकेगी।

प्रस्तुत सम्पादन में योग दान :

प्रस्तुत कार्य की पूर्ति में सबसे अधिक महत्त्व पूर्ण दिशा दर्शन पूज्य गुरुदेव का है। उनकी अपार कृपा के बिना यह कार्य कभी सुन्दर रीति से पूरा नहीं हो सकता था। उनकी विशाल ज्ञान-राशि में से तथा गम्भीर चिन्तन में से जो कण एवं जो स्फुलिंग मैं प्राप्त कर सका हूँ उसके लिए मैं अपने को भाग्यशाली समझता हूँ। स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी उन्होंने मुझे परामर्श दिया है, विचार दिया है और दिया है—दिशा दर्शन। अतः प्रस्तुत सम्पादन में जो कुछ सुन्दर है वह सब उन्हीं का है।

पण्डित दलसुख मालवणिया जी—जो समाज के परम ख्याति प्राप्त विद्वान् हैं जिनका चिन्तन और मनन गहरा और गम्भीर है—प्रस्तुत सम्पादन में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। अनुवाद और टिप्पणी को उन्होंने देखा है और देखकर उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं, उनसे मैंने बहुत कुछ लाभ उठाया है। पण्डित बेचरदास जी के योग दान के सम्बन्ध में मैं पहले कह चुका हूँ। संस्कृत टीका देने का उन्हीं का सुझाव था। टिप्पणी में भी कुछ स्थलों पर उनके सुझावों का तथा उनके विचारों का उपयोग किया गया है।

अन्तिम निवेदन :

प्रस्तुत सूत्र के सम्पादन में तथा विशेष रूप से इसके टिप्पण और सम्पादकीय लेख में जिन विद्वानों के ग्रन्थों का सहयोग ग्रहण किया है तथा जिनके विचारों का यथावश्यक कहीं पर उपयोग किया है, उन सब के प्रति मैं आभारी हूँ।

दशा के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन मे धन्य अनगार की तपस्या का भी रग-बिरग वर्णन किया गया है। धन्य अनगार के शरीर के समस्त अंगों का सजीव वर्णन किया है, जो अध्येता को विस्मय मे डाल देता है।

शास्त्र मे अन्यत्र भी तप का वर्णन बहुत मिलता है, जैसे अन्तकृद् दशा में। परन्तु एक बात विचार के योग्य है, कि अनशन रूप तप और ध्यान—दोनों मे विशिष्ट कौन है। अनशन बाह्य तप है और ध्यान आभ्यन्तर तप है। बाह्य की अपेक्षा आभ्यन्तर विशिष्ट तो होगा ही। ध्यान भी एक तप ही है। परन्तु जैन परम्परा में जितना प्रचार अनशन रूप तप का रहा है, उतना ध्यान योग का नहीं, जबकि वैदिक और बौद्ध परम्परा में ध्यान योग पर अधिक बल दिया है। कर्म-क्षय में जितना प्रबल कारण ध्यान है, उतना अनशन तप नही। अनशन तप मे देह दमन की मुख्यता है, जब कि ध्यान मे चित्त-वृत्तियों के शोधन पर अधिक भार दिया गया है। भगवान् महावीर जितने अधिक दीर्घ तपस्वी थे, उतने ही अधिक वे स्थिर ध्यान योगी भी थे। वस्तुत ध्यान और अनशन रूप तप, दोनो परम्पराएँ आगमों में सुरक्षित हैं। फिर भी प्रचलित परम्परा मे ध्यान की अपेक्षा अनशन तप का ही अधिक आग्रह था। यह प्रश्न विद्वानों के लिए विचारणीय है।

प्रस्तुत सम्पादन की विशेषता

प्रस्तुत सूत्र का प्रकाशन आचार्य प्रवर परम श्रद्धेय आत्माराम जी म० की ओर से तथा पूज्य श्री घासीलाल जी म० की ओर से भी हो चुका है। परन्तु उनकी शैली से इसकी शैली सर्वथा भिन्न है और अद्यतन भी। इसमे मूल और मूल का मूल-स्पर्शी अनुवाद है। अभयदेव सूरिकृत सस्कृत टीका भी अलग स्वतन्त्र रूप मे दे दी गई है, जिससे सस्कृतज्ञ विद्वान् तथा सस्कृत मे अभिरुचि रखने वाले पाठक उससे लाभ उठा सकते हैं। सस्कृत टीका के बाद में हिन्दी टिप्पण दे दिए गए हैं। मूल सूत्र मे समागत व्यक्तियो का तथा नगरों का सक्षिप्त परिचय तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से दिया गया है, जिससे आगम प्रेमियों को प्रस्तुत सूत्रगत व्यक्तियो के जीवन से सहज परिचय हो सके और उनके पावन जीवन से कुछ सद्गुण ग्रहण किए जा सकें। टिप्पणो के बाद तीन वर्गों के अलग-अलग तीन चार्ट दे दिए गए हैं, जिससे तत्-तत् अध्ययन में समागत व्यक्ति के जीवन की सक्षिप्त झाँकी मिल सके। अन्त मे शब्द कोष भी दे दिया गया है, जिसमे आगमो पर अनुसधान कर्ताओ को विशेष सुविधा रह सकेगी तथा विशेष शब्द और पारिभाषिक शब्दो का ज्ञान हो सकेगा। प्रारम्भ मे मेरा लेख है,—"आगम और उसके परिवार की परिचय रेखा"—जिससे यह जाना जा सकेगा, कि आगम साहित्य का महावीर युग से आज तक कैसे विकास होता रहा है। और मूल आगमों को समझने के लिए नियुक्ति, भाष्य, चूर्णि और सस्कृत टीकाओं का अध्ययन कितना अनिवार्य है? उक्त व्याख्याओ की सर्वथा उपेक्षा करके आगम-रहस्य को जानने का और समझने का दावा सर्वथा मिथ्या होगा, कोरा दम्भ होगा।

प्रस्तुत सम्पादन की सबसे बडी विशेषता है—"अनुत्तरोपपातिक एक अध्ययन" प्रस्तुत लेख, आगमो के परम विद्वान् और प्राकृत तथा पालि साहित्य के विराट् विचारक पण्डित बेचरदास जी दोशी का है। यह लेख, प्रस्तुत सूत्र की भूमिका रूप है। इसमे पण्डित जी ने अत्यन्त परिश्रम किया है। गहरा चिन्तन करके पण्डित जी ने जो नवनीत जन चेतना को अर्पित किया है, उसके लिए मैं उनका

अनुत्तरोपपातिक-दशा

श्रुत और श्रुति :

भारतीय साहित्य में 'श्रुति' और 'श्रुत' शब्द चिर-परिचित रहे हैं। श्रुति और श्रुत—दोनों का अर्थ एक ही है, अर्थात्—सुनी हुई या सुना हुआ। वैदिक परम्परा में 'श्रुति' शब्द वेदों के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैन परम्परा में 'श्रुत' शब्द 'श्रुत-ज्ञान' अर्थात्—आगम-शास्त्र अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। 'नन्दी सूत्र' में श्रुतज्ञान का (प्रमाण का) वर्णन विस्तार से किया गया है। वहाँ पर ज्ञान के पाँच प्रकार बताये गए हैं—मति-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान, मनःपर्याय-ज्ञान तथा केवल ज्ञान। इन पाँच ज्ञानों को प्रत्यक्ष और परोक्ष—इन दो प्रमाणों में विभक्त किया गया है। श्रुत ज्ञान परोक्ष है। अंग उपांग मूल और छेद आदि सब शास्त्रों का अन्तर्भाव श्रुत-ज्ञान में बतलाया गया है। जो ज्ञान (विद्या) श्रवण-परम्परा से उपलब्ध है, अर्थात् गुरु से शिष्य को सुनाया, शिष्य ने गुरु होकर फिर अपने शिष्य को सुनाया—इस प्रकार जो ज्ञान कर्णोपकर्ण होकर आया है, उसका 'श्रुति' तथा 'श्रुत' नाम सर्वथा सार्थक एवं समर्थ है। तथा जो ज्ञान कर्णोपकर्ण होकर आया है, और अनेक प्राचीन आचार्यों ने अपने स्मरण-द्वारा जिसको सुरक्षित रखा है उसकी 'श्रुति' संज्ञा वैदिक परम्परा में तथा 'श्रुत' संज्ञा जैन परम्परा में प्रचलित है।

'आचारांग सूत्र' में सबसे प्रथम जो वाक्य आया है वह इस प्रकार है—

'सुयं (सुतं) मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं।'

अर्थात्—हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उस भगवान् ने इस प्रकार कहा हुआ है। उक्त वाक्य में सबसे प्रथम 'सुयं' शब्द है, जिसका अर्थ है—श्रुत अर्थात् सुना हुआ। आचारांग के निर्युक्तिकार—र और टीकाकार आचार्य शीलांक को 'श्रुत' शब्द द्वारा उक्त अर्थ सम्मत है।

बौद्ध परम्परा के पिटकों में प्रत्येक ग्रन्थ के प्रत्येक प्रकरण की आदि में प्रायः इस प्रकार का पाया जाता है—

'एवं मे सुतं, एकं समयं भगवा इच्छानंगले विहरति।' —सुत्त निपात १२ वाँ सुत्त।

'एवं मे सुतं एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति।' —सुत्त निपात १६ वाँ सुत्त।

अर्थात्—'मैंने ऐसा सुना है कि एक समय भगवान् बुद्ध इच्छानंगल नामक ग्राम में अथवा श्रावस्ती नगर में विहार करते हैं, और वहाँ मैंने भगवान् से ऐसा सुना है।

सन्मति ज्ञान पीठ के प्रबन्धको ने और विशेषत उसके मन्त्री ने प्रस्तुत सूत्र के प्रकाशन मे और मुद्रण में जो अभिरुचि तथा जो उत्साह व्यक्त किया है, वह भी स्मरणीय है। सन्मति ज्ञान पीठ की 'आगम ग्रन्थ-माला' का प्रस्तुत प्रकाशन आठवाँ मणि है। सभाष्य सामयिक सूत्र, सभाष्य श्रमण सूत्र, चार भाग निशीथ भाष्य के और मूल नन्दी सूत्र के पश्चात् सानुवाद सटिप्पण और विस्तृत भूमिका के साथ मे नवमाँ अङ्ग सूत्र – अनुत्तरोपपातिक सूत्र—का प्रकाशन हो रहा है। आगम स्वाध्याय प्रेमी पाठको ने यदि प्रस्तुत प्रयत्न को पसन्द किया, तो अन्य आगम भी धीरे-धीरे इसी शैली से प्रकाशित करने का सन्मति ज्ञान पीठ का सकल्प है।

जैन स्थानक,
कानपुर
गुरुवार, १५-६-१६६०

विजय मुनि,
शास्त्री, साहित्यरत्न

अनुत्तरोपपातिक-दशा

श्रुत और श्रुति :

भारतीय साहित्य में 'श्रुति' और 'श्रुत' शब्द चिर-विश्रुत रहे हैं। श्रुति और श्रुत—दोनों का अर्थ एक ही है, अर्थात्—सुनी हुई या सुना हुआ। वैदिक परम्परा में 'श्रुति' शब्द वेदों के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैन परम्परा में 'श्रुत' शब्द 'श्रुत-ज्ञान' अर्थात्—ज्ञान-साधन शास्त्र अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। 'नन्दी सूत्र' में पुष्कल ज्ञान का (प्रमाण का) वर्णन विस्तार से किया गया है। वहाँ पर ज्ञान के पाँच प्रकार बताये गए हैं—मति-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान, मनःपर्याय-ज्ञान तथा केवल ज्ञान। इन पाँच ज्ञानों को प्रत्यक्ष और परोक्ष—इन दो प्रमाणों में विभक्त किया गया है। श्रुत ज्ञान परोक्ष है। अंग उपांग मूल और छेद आदि सब शास्त्रों का अन्तर्भाव श्रुत-ज्ञान में बतलाया गया है। जो ज्ञान (विद्या) श्रवण-परम्परा से उपलब्ध है, अर्थात् गुरु ने शिष्य को सुनाया, शिष्य ने गुरु होकर फिर अपने शिष्य को सुनाया—इस प्रकार जो ज्ञान कर्णोपकर्ण होकर आया है, उसका 'श्रुति' तथा 'श्रुत' नाम सर्वथा सार्थक एवं अन्वर्थ है। तथा जो ज्ञान कर्णोपकर्ण होकर आया है, और अनेक प्राचीन आचार्यों ने अपने स्मरण-द्वारा जिसको सुरक्षित रखा है, उसको 'श्रुति' संज्ञा वैदिक परम्परा में तथा 'श्रुत' संज्ञा जैन परम्परा में प्रचलित है।

'आचारांग सूत्र' में सबसे प्रथम जो आदिम वाक्य है, वह इस प्रकार है—

'सुयं (सुमं) मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं।'

अर्थात्—हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उस भगवान् ने इस प्रकार कहा हुआ है। उक्त आदिम वाक्य में सबसे प्रथम 'सुयं' शब्द है जिसका अर्थ है—श्रुत अर्थात् सुना हुआ। आचारांग के विवरणकार—चूर्णिकार और टीकाकार आचार्य शीलांक को सुयं शब्द द्वारा उक्त अर्थ सम्मत है।

बौद्ध परम्परा के त्रिपिटकों में प्रत्येक ग्रन्थ के प्रत्येक प्रकरण की आदि में प्रायः इस प्रकार का उल्लेख पाया जाता है—

'एवं मे सुतं एकं समयं भगवा इच्छानंगले विहरति।' —सुत्त निपात १२ वाँ सुत्त।

'एवं मे सुतं, एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति।' —सुत्त निपात ११ वाँ सुत्त।

अर्थात्—'मैंने ऐसा सुना है, कि एक समय भगवान् बुद्ध इच्छानंगल नामक ग्राम में तथा श्रावस्ती नगर में विहार करते हैं, और वहाँ मैंने भगवान् से ऐसा सुना है।'

बौद्ध परम्परा के प्राचीनतम 'पिटक' आदि ग्रन्थों में इस प्रकार के अनेक वाक्य आते हैं और उनमें आचाराग की तरह ही सबसे प्रथम 'सुत' शब्द भी आता है। 'सुत' 'किग्रा' 'सुय'—शब्दों का कोई अर्थ भेद नही है, केवल पुराने और नये उच्चारण का ही भेद है। 'सुत' पुराना उच्चारण है, इसकी अपेक्षा 'सुय' शब्द भाषा के विकास की दृष्टि से नया उच्चारण है। यद्यपि जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में आदिम वाक्य के रूप मे 'सुत' अथवा 'सुय' शब्द आता है, तथापि जैनशास्त्र ही जैन परम्परा मे 'श्रुत' सज्ञा से प्रसिद्ध हुए हैं, बौद्ध-परम्परा में बौद्ध शास्त्र नहीं। यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य है।

श्रुत-पुरुष

प्रस्तुत 'अनुत्तरोपपातिक दशा' श्रुत ज्ञान के अन्तर्गत है। जिस प्रकार पुरुष के अग होते हैं, उसी प्रकार जैन परम्परा मे श्रुत-रूप पुरुष की कल्पना करके, उसके अगों की कल्पना की गई है। अर्थात् 'श्रुत' को पुरुष की उपमा दी गई है और उस श्रुत-पुरुष के बारह अग माने गए हैं। इसलिए 'अनुत्तरोपपातिक दशा' को अग कहा जाता है और वह श्रुत-पुरुष का नववाँ अग है। उक्त नवम अग का समग्र परिचय इस प्रकार से है—

अग और उपाग

'नन्दी सूत्र' में श्रुत ज्ञान के चतुर्दश प्रकार बताए गए हैं। उसमे सम्यक् श्रुत, अगमिक श्रुत, अग-प्रविष्ट श्रुत—इन तीन भेदो में प्रस्तुत नवम अग का समावेश हो जाता है।

जिस व्यक्ति को जिन-वाणी का थोडा-सा भी स्पर्श है अर्थात् जिन-वाणी के अनुसार अनेकान्त-दृष्टिपूत अकदाग्रही आचारण-रूप स्पश है, उस व्यक्ति के द्वारा विहित अनुत्तरोपपातिक के पाठ को 'सम्यक् श्रुत' कहा जाता है। यहाँ स्पश का अर्थ है—'मणेण, वायाए काएण'—विचार द्वारा, भाषा द्वारा, और शरीर द्वारा जिन-वाणी का उक्त प्रकार से अल्प अश मे भी प्रत्यक्ष-मुक्ति के हेतु को लक्ष्य मे रखकर आचरण करना।

जिसमे बार बार समान अक्षर वाले तथा समान शब्द वाले पाठ आते हैं, उसका नाम गमिक श्रुत है। जो श्रुत ऐसा नहीं है, वह अगमिक श्रुत है। नन्दी सूत्रकार के विचारो मे दृष्टिवाद गमिक श्रुत है, और आचाराग आदि अग-सूत्र अगमिक श्रुत हैं। इस प्रकार अनुत्तरोपपातिक अग अगमिक श्रुत है।

और यह आगम नववाँ अग है, अत यह अग-प्रविष्ट श्रुत रूप है, अनग प्रविष्ट नही।

यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान मे रखने जैसी है कि श्रुत के भेद करते समय मूल नन्दी सूत्र के कर्त्ता ने उसके अग-प्रविष्ट और अनग-प्रविष्ट भेद तो बताए हैं, परन्तु अग रूप और उपाग रूप भेद नही बताए हैं। इस पर से मालूम होता है कि वह औपपातिक तथा रायपसेणीय आदि सूत्रो को अनग-प्रविष्ट कहता है, परन्तु उपाग-रूप नही।

यद्यपि 'उपाग' शब्द का निर्देश चूर्णियो मे उपलब्ध है, तथापि श्रुत के जहाँ चौदह भेद बताए हैं, वहाँ अग रूप श्रुत और उपाग-रूप श्रुत—इस प्रकार के भेद नही बताए है। यह बात भी ध्यान मे रखने योग्य है कि मूल नन्दीसूत्र मे अमुक अग का अमुक उपाग है, इस बात का भी कही निर्देश नही

किया गया है। अतः मालूम होता है कि औपपातिक आदि सूत्रों के लिए 'उपांग' शब्द का प्रयोग तथा अमुक अंग का अमुक उपांग है—यह विभाग भी सूत्र नन्दी सूत्रकार के समय में नहीं था यह उसके अर्वाचीन मालूम होता है।

अंग-बाह्य-श्रुत के नन्दी सूत्र में दो विभाग बताए गए हैं—आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त। आवश्यक में सामायिक आदि छह आवश्यक का समावेश किया है। आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत के दो भेद बताए हैं—कालिक और उत्कालिक। दशवैकालिक औपपातिक राजप्रश्नीय जीवाभिगम तथा प्रज्ञापना आदि को उत्कालिक कहा गया है और उत्तराध्ययन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति चन्द्र प्रज्ञप्ति निरयावलिका कल्प वतंसिका पुष्पिका पुष्पचूलिका तथा वृष्णि-दशा आदि को कालिक कहा गया है।

यद्यपि जैन परम्परा की आधुनिक मान्यता के अनुसार औपपातिक राजप्रश्नीय जीवाभिगम प्रज्ञापना जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति चन्द्र प्रज्ञप्ति तथा निरयावलिका आदि—ये सभी उपांग हैं, तथापि इनमें कितने ही कालिक श्रुत-रूप हैं और कितने ही उत्कालिक श्रुत-रूप हैं। नन्दी सूत्रकार ने इन औपपातिक आदि सूत्रों में से किसी एक को भी उपांग नहीं कहा है। उसने तो कालिक और उत्कालिक—दोनों प्रकार के श्रुत को प्रकीर्णक बताया है और उसके रचयिता के रूप में तीर्थंकर के शिष्यों को बताया है अर्थात्—*औपपातिक से लेकर वृष्णिदशा तक के सब ग्रन्थ प्रकीर्णक हैं ऐसा नन्दी सूत्रकार का अभिप्राय है* उसकी दृष्टि में ये उपांग-रूप नहीं हैं। प्रकीर्णक शब्द का पर्याय 'पयन्ना' शब्द जैन परिभाषा में प्रसिद्ध है और 'प्रकीर्णक' का अर्थ है—परचूरण फुटकल।

अनुत्तरोपपातिक दशा

समवायांग सूत्र में, अनुत्तरोपपातिक में वर्णित विषय का निर्देश तथा उसका श्लोक-परिमाण पद-संख्या आदि का कथन इस प्रकार है—

अनुत्तरोपपातिक में अनुत्तरोपपातिकों के नगर उद्यान चैत्य वनखंड समवसरण तत्कालीन राजा सौधर्म ईशान आदि नाम वाले बारह स्वर्ग माने गए हैं। बारहवें स्वर्ग के ऊपर नव ग्रैवेयक विमान आते हैं और इनके ऊपर विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित एवं सर्वार्थ-सिद्ध—ये पाँच अनुत्तर विमान आते हैं। ये विमान उत्तर = उत्तम प्रधान होने से इनको अनुत्तर विमान कहते हैं। क्योंकि अन्य सामान्य स्वर्गों की अपेक्षा ये पाँचों श्रेष्ठ हैं अतः इनको अनुत्तर विमान कहते हैं। जो मनुष्य अपने तप और संयम की साधना से इनमें उपपात (जन्म) पाते हैं, उनको अनुत्तरोपपातिक कहते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में ऐसे ही मनुष्यों का वर्णन किया गया है जिन्होंने अनुत्तर विमान में जन्म लिया फिर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष पद पाया। अतः प्रस्तुत सूत्र का नाम भी अनुत्तरोपपातिक पड़ गया। जिस प्रकार राम का वर्णन जिसमें आता है, उसका नाम रामायण। वसुदेव का वर्णन जिसमें आता है, उसका नाम वसुदेव हिंडी। इसी प्रकार जिसमें अर्थात् जिस ग्रन्थ में अनुत्तर विमान में जन्म लेने वाले मनुष्यों का वर्णन किया गया है, उसका नाम भी अनुत्तरोपपातिक पड़ गया।

माता-पिता धर्माचार्य धर्म-कथा इहलोक तथा परलोक की ऋद्धि भोग, त्याग प्रव्रज्या एवं उसकी पर्याय श्रुत का परिग्रह-अभ्यास तप उपधान प्रतिमा—विशेष प्रकार के तप संलेखना [illegible]

समय का पादपोपगमन (सथारा) आदि भक्त-प्रत्याख्यान, अनुत्तर विमान में उपपात (जन्म), वहाँ से फिर श्रेष्ठ कुल में जन्म, बोधि-लाभ तथा अन्त-क्रिया आदि का समस्त वर्णन अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे किया गया है।

अनुत्तरोपपातिक की वाचनाएँ परिमित हैं उसके अनुयोग द्वार सख्येय है, उसमें वेढा नाम के विशेष प्रकार के छन्द सख्येय हैं, श्लोक नाम के छन्द सख्येय हैं, उसकी निर्युक्ति सख्येय है, उसकी सग्रहणी सख्येय है, उसकी प्रतिपत्तियाँ सख्येय हैं। अग की अपेक्षा से वह नवमाँ अग है, एक श्रुत-स्कन्ध रूप है, तीन वर्ग हैं, अध्ययन दश हैं। उसके उद्देशन काल तीन हैं, समुद्देशन काल भी तीन हैं। उसके पद सख्येय हजार हैं उसमे अक्षर सख्येय हैं। उसके गम अनन्त हैं, और उसके पर्याय भी अनन्त ह।

अनुत्तरोपपातिक अग में परिमित त्रस जीवो का वर्णन आता है, अनन्त स्थावर जीवों के वर्णन का प्रसग आता है। इस सूत्र मे उक्त सब पदाथ स्वरूप से कहे गए हैं, तथा हेतु उदाहरण द्वारा व्यवस्थित भी किये गए हैं, और सामान्य रूप से तथा विशेष रूप से भी इनका निरूपण किया गया है। नाम स्थापना आदि भेदोपन्यास द्वारा भी वे सब पदार्थ उक्त सूत्र में प्रस्तुत किये गये हैं। इस सूत्र को समझने वाला आत्मा इसी प्रकार का, अर्थात् अनुत्तरोपपातिक रूप आत्मा होता है, तथा अनुत्तरोपपातिक में जो-जो विषय वर्णित है, उसका अच्छी तरह से ज्ञाता होता है और विज्ञाता भी होता है। इस प्रकार से इस सूत्र में चरण करण की प्ररूपणा की गई है।

नन्दी सूत्र मे भी प्रस्तुत सूत्र में आये हुए विषयों की प्ररूपणा की गई है, और वह प्ररूपणा समवायाग सूत्र की प्ररूपणा के समान है। अत हम नन्दी सूत्र के अभिप्राय का अलग से कथन यहाँ नहीं कर रहे हैं। नन्दी सूत्र के मूल-पाठ मे अध्ययनों की सख्या का निर्देश नही है, इतनी विशेषता है।

अनुत्तरोपपातिक के विषय मे निम्नलिखित बात विचारने योग्य है—

अनुत्तरोपपातिक के अन्त मे लिखा है कि 'अनुत्तरोववाइयदसाण एगो सुयक्खधो। तिण्ण वग्गा। तिसु चवे दिवसेसु उद्दिसइ। तत्थ पढमे वग्गे दस उद्देसगा बिइए वग्गे तेरस उद्देसगा। तइए वग्गे दस उद्देसगा।' अर्थात् अनुत्तरोपपातिक का एक श्रुतस्कन्ध है। तीन वग हैं। तीन दिनों मे इसका उद्दशन होता है अर्थात् तीन दिनों मे इसकी पढ़ाई पूरी हो जाती है। प्रथम वर्ग में दस उद्देशक हैं। दूसरे वर्ग मे तेरह उद्देशक हैं। तृतीय वर्ग में दस उद्देशक है—सब मिलकर तेतीस उद्देशक होते हैं।

अब अनुत्तरोपपातिक की मूलगत उत्थानिका-उपोद्घात वाक्य जब देखते हैं, तब उसमे तीन वर्ग तो बताये हैं, परन्तु उसमे उद्देशक का निर्देश नही किया। 'उद्देशक' शब्द के स्थान मे 'अध्ययन' शब्द का निर्देश किया है, यह भेद क्यों? यह प्रश्न अवश्य सशोधनीय है। उत्थानिका में लिखा है कि प्रथम वर्ग मे दस अध्ययन है। दूसरे वर्ग में तेरह अध्ययन हैं और तीसरे वर्ग मे दस अध्ययन हैं। इस प्रकार उत्थानिका के अनुसार इस सूत्र मे तेतीस अध्ययन हैं, उद्देशक नही। इस सम्बन्ध में समवायाग सूत्र मे इस प्रकार उल्लेख है—'एगे सुयक्खधे। दस अज्झयणा। तिण्णि वग्गा। दस उद्देसण काला।' (समवाय पृ० ११३, सूत्र १४४)

पदो की सख्या नन्दी सूत्र की वृत्ति म इस प्रकार दी गई है—

'पयग्गेण ति उवसग्गपय, निवायपय, नामियपय, अक्खाइयपय, मिस्सपय च । पए-पए च अधिकिच्च पच लक्खा छावत्तरि सहस्सा पयग्गेण भवन्ति ।'

अथवा—इह पद सूत्रालापक रूप मुपगृह्यते ततस्तथारूप पदापेक्षया सख्येयानि पद सहस्राणि भवन्ति, न लक्षा ।'—आह च चूर्णिकृत् ।

"अहवा सुत्तालावग पयग्गेण सखेज्जाइ पयसहस्साइ भवन्ति", एव मुत्तरत्रापि भावनीयम्—
—(नन्दी टीका, पृ० २३१)

उपसर्ग पद—प्र, परा, उप, अधि, आदि ।
निपात पद—च, वा, खु, एव, ण, आदि ।
नामिक पद—समणे, महावीरे, गोयमे, आदि ।
आख्यात पद—होइ, भासइ, पन्नवेन्ति, आदि ।

मिश्र पद—दो पदों को मिलाकर जो पद बनता है, अर्थात्—सामासिक पद, जैसे—
सं + यत = सयत ।

इस व्याख्या को मान लेने से व्याकरण-सम्मत विभक्त्यन्त पद मे तथा उक्त पद मे कोई विशेष भेद भासित नही होता ।

पद की दूसरी व्याख्या इस प्रकार है—

सूत्र का एक आलापक एक पद होता है । वाक्य का अर्थ जहाँ पूरा होता है, वह आलापक माना जाता है । जैसे—

'एगे आया'—यह स्थानाग सूत्र का प्रथम आलापक है ।

सुय मे आउस तेण भगवया एवमक्खाय'—यह भी एक आलापक है ।

'जहा ण भते ! केवली अंतकरं वा अतिम सरीरिय वा जाणइ पासइ, तहा णं छउमत्थे वि अतकर वा अतिम सरीरिय वा जाणाइ, पासइ ।

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सोच्चा जाणइ, पासइ, पमाणओ वा ? से किं त सोच्चा ? सोच्चा ण केवलिस्स वा केवलि-सावयस्स वा, केवलि-सावियाए वा, केवलि-उवासगस्स वा, केवलि-उवासियाए वा, तप्पक्खियस्स वा, तप्पक्खिय-सावगस्स वा, तप्पक्खिय-सावियाए वा, तप्पक्खिय-उवासगस्स वा, तप्पक्खिय-उवासियाए से तं सोच्चा ।' यह आलापक का एक और रूप है ।

'से किं त पमाणे ? पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते ।

तं जहा पच्चक्खे, अणुमाने, ओवम्मे, आगमे ।

जहा अणुओगदारे तहा णेयव्व पमाणं जाव तेण पर नो आगमे, नो अणतरागमे परपरागमे ।' यह भी आलापक का एक प्रकार

अंग पण्णत्ति—राजवार्तिकवत् है। विशेष नामों में तथा उनके क्रम में भेद है, जैसे—ऋजुदास (ऋजुदास) शालिभद्र, सुनक्षत्र, अभय, धन्य, वारिषेण, नंदन, नंद, चिलातपुत्र और कार्तिकेय।

राजवार्तिक आदि चारों ग्रन्थ अचेलक परम्परा के हैं। अतः इस पर से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि यह अंग-सूत्र अचेलक परम्परा को भी सम्मत है।

स्थानांग सूत्र में उक्त दश नाम इस प्रकार हैं—ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, सस्थान, शालिभद्र, आनन्द, तेतली, दर्शार्णभद्र और अतिमुक्तक। स्थानांग सूत्र के दसवें स्थान में इन दस नामों का निर्देश है।

इस प्रकार सचेलक परम्परा के और अचेलक परम्परा के ग्रन्थानुसार अनुत्तरोपपातिक सूत्र का परिचय जानना चाहिए।

वर्तमान में उपलब्ध यह सूत्र और प्राचीन काल में उपलब्ध वह सूत्र—इन दोनों में क्या विशेषता है? इसका उत्तर इस प्रकार है—

तीन वर्ग का होना—राजवार्तिक आदि चारों ग्रन्थों में नहीं बताया गया है। स्थानांग और राजवार्तिक में जिन विशेष नामों का निर्देशन है, वे सब तो नहीं, किन्तु उनमें से कुछ नाम वर्तमान सूत्र में उपलब्ध हैं। जैसे—वारिषेण (राजवार्तिक) नाम प्रथम वर्ग में है। इसी भांति—धन्य सुनक्षत्र तथा ऋषिदास (स्थानांग तथा राजवार्तिक) ये तीन नाम तृतीय वर्ग में वर्णित हैं।

बस, ये चार नाम ही वर्तमान सूत्र में विद्यमान हैं और किसी भी नाम का निर्देश नहीं है। जिन अन्य नामों का निर्देश वर्तमान पाठ में उपलब्ध है, वे नाम न तो स्थानांग में हैं और न राजवार्तिक में ही हैं। स्थानांग सूत्र के वृत्तिकार श्री अभयदेव सूरि इस सम्बन्ध में सूचित करते हैं कि स्थानांगउक्त नाम प्रस्तुत सूत्र की किसी अन्य वाचना में होने सम्भवित हैं। वर्तमान वाचना, तथाकथित अन्य वाचना से भिन्न है। समवायांग तथा नन्दी में जहाँ अनुत्तरोपपातिक का परिचय बताया है, वहाँ इस सूत्र की वाचनाएँ परिमित हैं अर्थात् अनेक हैं ऐसा बताया ही गया है।

प्रस्तुत सूत्र के पदों का प्रमाण धवला तथा जय-धवला में ९२,४४,००० (बानवें लाख, चावालीस हजार) बतलाया गया है। राजवार्तिक में पद-संख्या नहीं बताई है। समवायांग सूत्र के मूल में संख्येय लाख पद बताए हैं और वृत्ति में छयालीस लाख और आठ हजार (४६,०८,०००) पद बताए हैं। नन्दी सूत्र के मूल में संख्येय हजार पद बताए हैं। वृत्ति में संख्येय हजार पद बताकर, उसका अर्थ—छयालीस लाख और आठ हजार पद बतलाया है।

इस प्रकार अनुत्तरोपपातिक सूत्र का परिचय प्राचीन रीति से समझना चाहिए। वर्तमान में इसका जो परिचय है, वह आगे बताया जाने वाला है।

अन्तकृद् दशा

ग्यारह अंगों में अन्तकृत् सूत्र आठवां अंग है। इसमें ९० महापुरुषों के जीवन का सुन्दर वर्णन किया गया है, उनके वैभव विलास भोग और त्याग-तपस्या का इसमें सर्वांगीण वर्णन है। अनुत्तरोपपातिक सूत्र में नवमें अंग में ३३ महापुरुषों के भोगमय एवं तपोमय जीवन का सुन्दर चित्रण किया गया है। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि—अन्तकृत सूत्र में ९० (नवति) महापुरुष अपनी तपः साधना के द्वारा मुक्त हो चुके थे और प्रस्तुत अनुत्तरोपपातिक सूत्र में वर्णित ३३ महापुरुष अपनी तप: साधना के द्वारा पांच अनुत्तर विमानों में गए हैं। मनुष्य जन्म लेकर फिर तप: साधना करके वे मुक्त होंगे।

अनुत्तरोपपातिक दशा

प्रस्तुत अनुत्तरोपपातिक सूत्र का वर्तमान परिवेश तीन वर्गों में विभक्त है। प्रथम वर्ग में १० अध्ययन हैं, द्वितीय वर्ग में १३ अध्ययन हैं, और तृतीय वर्ग में १० अध्ययन हैं। इस प्रकार तीनों वर्ग की अध्ययन संख्या ३३ हो जाती है। प्रत्येक अध्ययन में एक-एक महापुरुष का जीवन वर्णित है।

प्रथम वर्ग :

इस वर्ग में—जालि मयालि उवयालि पुरुषसेन वारिषेण दीर्घदन्त लष्टदन्त वेहल्ल वेहायस और अभयकुमार—इन दस राजकुमारों का जीवन अंकित किया गया है। आर्य सुधर्मा ने अपने शिष्य जम्बू स्वामी को उक्त दस राजकुमारों के जन्म का नगर का माता-पिता का वहां के राजा का तथा वहां के उद्यान आदि का विस्तृत परिचय कराकर उक्त राजकुमारों की त्याग-तपस्या का वर्णन भी बड़े सुन्दर ढंग से सुनाया है और बाद में यह भी बतलाया है कि ये दसों कुमार यहां का मानव आयुष्य पूर्ण करके कौन-से अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए हैं, वहां की स्थिति कितनी है तथा वहां से चवकर वे देव कहां जन्म लेंगे और फिर मनुष्य जन्म पाकर वहां से सिद्ध बुद्ध और मुक्त होंगे।

द्वितीय वर्ग :

इस वर्ग में—दीर्घसेन महासेन लष्टदन्त गूढदन्त शुद्धदन्त हल्ल द्रुम द्रुमसेन महाद्रुमसेन सिंह सिंहसेन महासिंहसेन और पुण्यसेन—इन तेरह राजकुमारों के जीवन का वर्णन भी जालिकुमार के जीवन की भांति ही संक्षेप में किया गया है। इस वर्ग में वर्णित महापुरुषों का जीवन भोगमय तथा तपोमय था, और सभी राजकुमार अपनी तपःसाधना के द्वारा पांच अनुत्तर विमानों में गए हैं तथा वहां से चवकर मनुष्य जन्म पाकर सिद्ध बुद्ध और मुक्त होंगे।

तृतीय वर्ग :

इस वर्ग में—धन्यकुमार, सुनक्षत्रकुमार ऋषिदास पेल्लक रामपुत्र चन्द्रिक पृष्टिमातृक पेढालपुत्र पोट्टिल्ल तथा वेहल्ल—इन दस कुमारों के भोगमय एवं तपोमय जीवन का सुन्दर चित्रण किया गया है। उक्त दस कुमारों में धन्यकुमार का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है।

धन्य कुमार

धन्यकुमार काकन्दी नगरी की भद्रा सार्थवाही का पुत्र था। भद्रा के पास अपरिमित धन था तथा भोग-विलास के साधन भी अपरिमित थे। भद्रा ने अपने सुयोग्य पुत्र का लालन-पालन बड़े ऊँचे स्तर से किया था। धन्यकुमार उन भोग के साधनों मे डूब चुका था। परन्तु एक दिन भगवान् महावीर की दिव्य वाणी सुनकर उसके मन मे वैराग्य की भावना जागृत हो गई, और तदनुसार वह अपने विपुल वैभव को छोडकर मुनि बन गया।

मुनि बन जाने के बाद धन्य ने जो त्याग और तपस्या की, वह अदभुत और बेजोड है। तपोमय जीवन का इतना सुन्दर एव सर्वांगीण वर्णन 'श्रमण साहित्य' मे तो क्या, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य मे अन्यत्र दिखाई नही देता। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थ—'कुमार सम्भव' महाकाव्य मे पार्वती की तपस्या का जो वर्णन किया है, वह महत्वपूर्ण अवश्य है, फिर भी धन्य मुनि की तपस्या का वर्णन उससे बहुत विशिष्ट है।

धन्य मुनि की तपस्या का वर्णन प्रस्तुत अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे बडे विस्तार के साथ किया गया है और अन्त में यह भी बतलाया गया है कि धन्य मुनि अपना आयुष्य पूरा करके सर्वार्थसिद्ध विमान मे देवरूप मे उत्पन्न हुए। वहाँ से चवकर, मनुष्य जन्म पाकर, तप साधना के द्वारा सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होंगे।

काकन्दी की भद्रा सार्थवाही का द्वितीय पुत्र सुनक्षत्रकुमार था। उसका वर्णन भी धन्यकुमार की तरह ही समझना चाहिए। शेष आठ कुमारों का वर्णन प्राय भोग विलास में तथा त्याग तपस्या मे सुनक्षत्र के समान ही समझना चाहिए।

इस प्रकार प्रस्तुत अनुत्तरोपपातिक सूत्र में तीन वर्ग तथा तेंतीस अध्ययन म जो विषय वर्णित किया गया है, वह वर्णन सम्पूर्ण प्रकार से प्राचीन समय की परिस्थिति का द्योतक है। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

अब सशोधक और तत्त्व-विश्लेषक तथा विवेचक पाठकों का ध्यान इस सूत्रगत कई मुख्य विशेष तथ्यों की ओर खीचना चाहता हूँ—

साक्षी आत्मा के साथ भाव-मन सदा रहता है। जब विभाव-रूप समस्त संस्कार नष्ट हो जाते हैं तब आत्मा सदेह होते हुए भी मुक्त समझी जाती है। गीता में जिसको स्थित प्रज्ञ के रूप में अंकित किया है वही जैन शास्त्र में सदेह मुक्त है। स्थित प्रज्ञता का स्वरूप आत्मा में ही निहित है, शरीर से उसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। परन्तु स्थित प्रज्ञता की साधना में शरीर का सहकार रहता है। आत्मा में स्थित प्रज्ञता के प्रकटीकरण के लिए संयम की अपेक्षा आवश्यक है, और वह संयम शरीर सम्बद्ध मन के संयम से सहज सिद्ध हो सकता है।

संयम और मन :

मन का संयम विचारात्मक विवेक या विश्लेषण बुद्धि के ऊपर निर्भर है, केवल शरीर के कठोर-से-कठोर दमन पर नहीं। यों तो शरीर के कठोर-से-कठोर दमन करने पर भी मन का संयम कभी-कभी असम्भव-सा प्रतीत होता है। संसार में ऐसे अनेक मनुष्य दिखाई देते हैं, प्रत्यक्ष नजर आते हैं जो भयंकर यातना भोग रहे हैं, फिर भी उनमें मन के संयम का लेश भी नहीं पाया जाता। इस सम्बन्ध में गीता में भी स्पष्ट बताया गया है कि —

"विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥—गीता

—(अध्याय २ श्लोक ५९)

जो व्यक्ति निराहार रहते हैं, उनके विषय भोग-विलास तो विनिवृत्त हो जाते हैं परन्तु भोग-विलास का रस विनिवृत्त नहीं होता। तात्पर्य यही है कि निराहारी व्यक्ति जब आहारादिक का प्रयोग शुरू करते हैं तब विषय-विलास फिर जाग उठते हैं। इतना ही नहीं कभी-कभी तो बड़े जोरों से आक्रमण शुरू कर देते हैं। जिस किसी को जब 'पर' का परमात्म-तत्त्व का अनुभव होता है तब वैषयिक रस भी निवृत्त हो जाता है। फिर चाहे वह देही निराहार ही अथवा साहार हो। पर तत्त्व का दर्शन और अनुभव हो जाने के बाद संयमित आहार आदि प्रवृत्ति बाधक नहीं हो सकती। जैन परिभाषा में यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है —

"जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ ॥"

—(दशवैकालिक अध्ययन ४, गा ८)

"यतना से चलो, यतना से खड़े रहो, यतना से बैठो, यतना से सोओ, यतना से भोजन करो और यतना से बोलो—तो पाप-कर्म का बंध नहीं होता।"

आगे यहाँ तक भी कहा गया है कि जिसके चित्त में सतत यतना और संयम भावना होती है, उसके देह व्यापार से यदि किसी जीव का घात भी हो जाए, तो भी उसको हिंसक नहीं समझा जाता। इसके विपरीत जिसके चित्त में यतना का कोई सुनिश्चित स्थान ही नहीं है उसका देह चाहे कितना ही स्थिर क्यों न हो और उसके द्वारा किसी जीव का घात भी न होता हो तब भी उसको हिंसक माना जाता है।

जहाँ कहीं भी आरम्भ, समारम्भ आदि के त्याग की बात आती है, वहाँ सर्वत्र—'मणं वायाए काएण।' अर्थात्—प्रथम स्थान मानसिक त्याग को दिया गया है और अन्तिम स्थान कायिक (शारीरिक) त्याग का है।

"धम्मो मगल मुक्किट्ठं अहिंसा सजमो तवो,"—इस गाथा में भी 'जस्स धम्मे सया मणो"—कहकर बताया गया है कि जिसका मन सदा धर्म में है, वह धर्मवीर है। इसमें शरीर का तो कोई निर्देश भी नही किया है। जब मन धर्म में रत रहता है, तो शरीर अपने आप धर्म में लग जाता है। परन्तु जब शरीर धर्म क्रिया में लगा होता है, तब मन कभी तो शरीर का अनुसरण करता है, और कभी नही भी। इस प्रकार मन सर्वत्र मुख्य है, और वाणी तथा शरीर मन का अनुसरण करते हैं। जो कुछ भी स्थूल प्रवृत्ति होती है, वहाँ सकल्प ही प्रधान कारण है। यदि सकल्प शुद्ध और शुभ हैं, तो प्रवृत्ति भी शुद्ध एव शुभ होती है। इसके विपरीत यदि सकल्प अशुद्ध एव अशुभ है, तो प्रवृत्ति भी तद्रूप अशुद्ध एव अशुभ होती है। यह नियम अविनाभाव से है और सदाकाल रहता है। इस विवेचना से समझना चाहिए कि जैन शास्त्र विशेष करके मन से सयम और नियन्त्रण की प्रेरणा देता है।

सराग सयम

इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि—तप न करना चाहिए। तप से देह दमन न करना, इन्द्रिय निग्रह न करना चाहिए, बल्कि मूल आशय यह है कि तप से पूर्ववर्ती सकल्प की शुद्धि सतत आवश्यक है। यदि सकल्प शुद्ध न होगा, तो वह तप भव-भ्रमण का कारण बनेगा और राग-द्वेष रहित दशा पाने में विफल होगा, समता भाव का पोषक नही होगा, तथा आत्म स्वरूप प्राप्ति और अनुभूति मे भी बाधक होगा।

सकल्प की शुद्धि मे भी तारतम्य रहता है। किसी की वृत्ति मे प्रधान रूप से केवल सकल्प शुद्धि ही होती है, किसी की वृत्ति मे सकल्प शुद्धि तो है, परन्तु परिपूर्ण नही—अल्प है, अल्पतर है, और अल्पतम भी है। सकल्प शुद्धि परिपूर्ण नही—इसका यह अर्थ हुआ कि विभाव में थोड़ी-बहुत आसक्ति है, अर्थात्—भौतिक सुख-सामग्री या भौतिक विशेष अनुकूलता की ओर भी मानसिक झुकाव है। ऐसी सकल्प शुद्धि वीतरागता प्राप्त करने के लिए तात्कालिक अनन्तर कारण नहीं हो सकती। परन्तु परम्परा मे कारण हो सकती है। विभावो में आसक्ति का दूसरा नाम सराग-सयम है। शुद्ध सयम—सदेह निर्वाण का अनन्तर कारण है और सराग सयम परम्परा से कारण है। सराग सयम म भी अशुद्धियाँ विशेष हो, तो वह भव-बधक हो जाता है।

धन्य मुनि की तपस्या

अनुत्तरोपपातिक सूत्र मे धन्य अनगार की कठोरतम तपस्या का वर्णन पढ़कर रोगटे खड़े हो जाते हैं। अहो, कैसा कठोर देह-दमन है! इतने दमन का परिणाम क्या? इस सम्बन्ध मे सूत्रकार कहते हैं कि अनुत्तर-विमान में वास—उच्च प्रकार के स्वर्ग की प्राप्ति जिसकी कोई कल्पना तक नहीं कर सकता कि इतनी कठोर तपस्या करने वाले धन्य मुनि मे भी वैभाविक वृत्ति बैठी होगी, परन्तु कार्य-कारण

के नियमानुसार ग्रन्थकार ने स्पष्ट बताया है कि इतने घोर तपस्वी धन्यकुमार ने भी जीते जी निर्वाण का अनुभव नहीं किया परन्तु बीच में एक जन्म (देव जन्म) लेना पड़ा और उसके बाद धन्य मुनि निर्वाण का अनुभव प्रत्यक्ष जीवन में ही सदेहावस्था में कर सकेंगे। धन्य मुनि के कठोरातिकठोर देह दमन का अनन्तर परिणाम स्वर्ग है। स्वर्ग संसार। फिर वह भले ही कितना ही उच्चतम हो परन्तु संसार तो संसार ही है वह निर्वाण नहीं बन सकेगा। धन्य मुनि का स्वर्गगमन ही उसकी सराग तपस्विता पूर्वतन मनस्क बुद्धि की सापेक्षता को साबित करता है। यदि चित्त में अल्प भी वैभाविक आसक्ति रह गई तो ऐसे तपस्वियों को भी संसार-भाव भ्रमण अनिवार्य है। इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि आजकल हम लोग भी विभिन्न प्रकार के देह-दमन एवं देह दण्ड कर रहे हैं किन्तु हमारा देह-दमन धन्यकुमार के घोरातिघोर देह-दमन की तुलना में नगण्य है तुच्छ है और तुच्छतम है। फिर भी हमारे देह-दमन प्रयास के पीछे यदि सम्यक् बुद्ध न होगा तो उस का परिणाम कैसा भयंकर प्रकट होगा और वह परिणाम हमारे बन्धनों में कितनी वृद्धि करेगा? यह बात अवश्य चिन्तनीय है सोचनीय है और स्थिर बुद्धि से समझने योग्य है।

देह दमन से मुक्ति नहीं

यह देह-दमन कारण रूप है और वैभाविक सुखों की प्राप्ति चक्रवर्ति-पद, राजपद चक्रवर्ती पद इन्द्रासन देवपद आदि सब देह-दमन का कार्य है—परिणाम है। यह परिणाम भी प्रत्यक्ष रूप से इस देह से अनुभूत नहीं होता अपितु अन्य जन्म में या जन्म-जन्मान्तरों में। कार्य और कारण की घनिष्ठता के सम्बन्ध में एक उदाहरण देखिए—

गेहूँ बोने से परिणाम में गेहूँ ही पैदा होंगे चावल कभी नहीं। अग्नि के पास बैठने से ताप का ही अनुभव होगा शीत का कभी नहीं। तिलों में से ही तेल निकल सकेगा बालुका कणों में से तो लाख प्रयत्न करने पर भी तेल नहीं निकलेगा आदि अनेकानेक उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कारणानुरूप कार्य होना नितान्त आवश्यक है फिर भी इस जन्म में भोगों को त्याग कर दैहिक कष्टों का अनुभव करने से राजपद आदि वैभाविक सुख सामग्री के स्थान कैसे प्राप्त हो सकते हैं? इसमें कारणानुरूप कार्य का सिद्धान्त भी कैसे संगत हो सकता है? भोगों की तरफ घृणा भाव से इन्द्रियों के विषयों की तरफ उपेक्षा वृत्ति से और स्त्री-स्पर्श आदि वैभाविक सुख-वासना की तरफ सविक्षेप जुगुप्सा रख करके प्रायः लोग संसार को त्याग कर सन्यासी मुनि भिक्षु बन जाते हैं। परन्तु उन्होंने तो जन्म-जन्मान्तरों में जिस सामग्री के प्रति घृणा उपेक्षा नफरत अथवा जुगुप्सा का अभ्यास बना लिया है, फिर भी फलस्वरूप उस सामग्री को वे पाते हैं। ऐसी अनेक बातें कथाओं में परम्परा से चली आती हैं। बताइये इसमें कार्य और कारण की संगति किस प्रकार की जावे? यह विषय अवलोकनीय है विश्लेषणपूर्वक विचारणीय और विशेष चिन्तन के द्वारा समाधानीय भी है, ऐसा किस विवेकी को नहीं महसूस होगा? ऐसी बात केवल जैन परम्परा में ही नहीं है अपितु विश्व के समस्त धर्म-सम्प्रदायों में भी है। देखिए इसी विषय में गीता में भी लिखा है—

'यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥
तथा— हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्। —(गीता अध्याय २ श्लोक ३२ ३७)

'हिंसा प्रधान, ईर्ष्या प्रधान और कृष्णा प्रधान युद्ध में मरने से क्षत्रिय लोग स्वर्ग को पाते हैं।"

भला जिस प्रवृत्ति में मानवता का ही ध्वंस होता हो, उससे स्वर्ग कैसे मिल सकता है? युद्ध में मृत्यु पाना भी एक प्रकार का देह दमन ही है। पुराणों में ऐसे अनेक तपस्वियों की कथाएँ आती हैं जिन्होंने इन्द्र पद या चक्रवर्ती आदि विविध प्रकार के पदों की प्राप्ति के लिए पंचाग्नि के ताप का सहन किया, लोहे के कंटकमय बिछौने पर सोते रहे, तीव्रतम शीतकाल में भी पानी में ही खड़े रहे, जल पानी में ही जीवन बिताते रहे, आदि अनेक प्रकार की यातनाएँ सहन करते रहे। इस प्रकार तपस्वियों को विचलित करने के लिए इन्द्र की तरफ से अप्सराएँ आती रहीं। अप्सराओं के सम्पर्क से जो विचलित हुआ, वह तो तप-भ्रष्ट हो ही गया। और जो विचलित न हुआ, वह स्वर्गादिक लोकों का पात्र बना, ऐसी कथाएँ अनेक हैं। इसी प्रकार बौद्ध भिक्षुओं के स्वर्ग पाने की भी अनेक कथाएँ पाली पिटक में मौजूद हैं।

अब इस बात को विज्ञान के प्रकाश में कार्य-कारण के न्याय से सोचना चाहिए कि काय-क्लेश और स्वर्गीय सुख या भौतिक सुख का परस्पर किस प्रकार का सम्बन्ध है और काय-क्लेश से वर्तमान जीवन में तो नहीं, पर जन्म जन्मान्तर में ही भौतिक सुख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है? इस गम्भीर परिस्थिति पर भी विचार-विमर्श करना आवश्यक है। साथ में एक प्रश्न यह भी है कि—धर्म समझकर किए गए काय-क्लेश से सचमुच भौतिक सुख मिलता ही है तो इस वर्तमान जीवन में सबको समान भाव से क्यों नहीं मिलता?

जन्मान्तर तो अवश्य ही है, परन्तु भारतीय सभी धर्म सम्प्रदायों में तथा एशियाई सभी धार्मिक मान्यताओं में उक्त धार्मिक काय क्लेश का सम्बन्ध स्वर्गीय वैभवों के साथ जो जोड़ा गया है तथा सती होना, भैरव जप के द्वारा मरना, काशी का करवट लेना, कमल पूजा करना, गंगा में डूब कर मरना आदि अनेक क्रियाओं से मरने वाला स्वर्गवासी होता है—ऐसी मान्यताएँ आज भी प्रचलित हैं। अतः इन सब मान्यताओं को कार्य कारण की दृष्टि से कैसे संगत करना? और इन सबके मूल विचारों का संशोधन इस विज्ञान के युग में होना जरूरी है। अतएव धन्यकुमार के जीवन को निमित्त बनाकर यह चर्चा प्रस्तुत की गई है।

जैन विचार धारा में इस सम्बन्ध में एक विशेष बात और भी है। आगमों में (व्याख्या प्रज्ञप्ति भगवती सूत्र, शतक १, उद्देशक १, पृ० ६१) बताया गया है कि जो लोग बिना इच्छा भी काय क्लेश भोगते हैं, पराधीन बनकर कष्ट सहन करते हैं, वे भी स्वर्ग के सुख के भागी होते हैं। इतनी कष्ट सहन की अचिन्त्य महिमा बताई गई है, तो यह बात भी विशेष विचारणीय है।

औपपातिक नामक आगम में भी इस सम्बन्ध में पृष्ठ ८५ पर जो उल्लेख है, वह व्याख्या प्रज्ञप्ति के उक्त उल्लेख के साथ अक्षरशः मिलता है, और पृष्ठ ८६ पर जो उल्लेख है, वह इस प्रकार है—

काम क्लेश और दुःख।

ग्राम नगर पत्तन आदि में रहने वाले जिन मनुष्यों के हाथ और पैर काठ या लोहे की बेड़ियों से बँधे हुए हैं, रज्जु-डोर से बँधे हुए हैं, जेलखाने के कठोर बंधन से बँधे हुए हैं जिनका पेट चिरवा डाला गया है जिनके कलेजे का मांस खींच लिया गया है रज्जु से बाँधकर जिनको उल्टा लटकाया गया है जिनको शूली पर चढ़ाया गया है, जिनके हाथ-पैर, कान-नाक ओठ जीभ मुँह तथा मस्तक को छेदा गया है—ऐसे अगणित दुःखी लोग यदि असंक्लिष्ट परिणाम वाले रहते हैं तो वे सभी देव-गति को पाते हैं। इस प्रकार का यह आगमिक उल्लेख विशेष रूप से संशोधनीय है।

व्याख्या प्रज्ञप्ति का उक्त उल्लेख और औपपातिक (पृ ८६) वाला उल्लेख—इन दोनों में केवल अकाम वृत्ति से ही कष्ट सहन करने का परिणाम—देवगति बताया है। परन्तु इसमें इस बात का कोई निर्देश नहीं है कि उन पीड़ित मनुष्यों का परिणाम—मनोभाव कैसा होना जरूरी है। औपपातिक के पृष्ठ ९ वाले उल्लेख में कष्ट सहन करने वालों की देवगति होती है—यह कहने के साथ उनके परिणाम मनोभाव असंक्लिष्ट होने चाहिए? ऐसा निर्देश किया गया है देवगति का अर्थ—जैन परिभाषा से प्रथम देवगति रूप व्यन्तर देव की गति समझना चाहिए और इस गति के साथ जो असंक्लिष्ट परिणाम का सम्बन्ध बताया है वह असंक्लिष्ट परिणाम किसी विशेष प्रकार की आध्यात्मिक शुद्धि के साथ सम्बन्ध नहीं रखता है यह भी जान लेना चाहिए। जैसे कोई बलवान किसी निर्बल मनुष्य को दुःख दे तो निर्बल मनुष्य विशेष त्रास पाने के भय से कुछ भी चूं-चूं न करे और शान्त भाव से अपने का भुगते है। ऐसी मनोवृत्ति प्रायः ऊपर 'असंक्लिष्ट परिणाम' शब्द में विवक्षित है।

इस प्रकार यह सब आगमिक उल्लेख विवेकपूर्वक विचारने योग्य हैं, और दुःख सहन का सम्बन्ध देवगति के साथ किस प्रकार जोड़ा जाए? यह विषय संशोधनीय है। साथ ही इस उल्लेख से एक बात की स्मृति होती है कि पूर्वोक्त प्रकार से दुःख सहन करने वाले दुनिया भर में विद्यमान हैं तो सूत्र वचन के अनुसार वे सब अवश्य ही देवगति को पावेंगे। ऐसा वचन उनके लिए विशेष आश्वासन रूप बनेगा जिससे वे वर्तमान दुःख को शान्ति से सहन कर सकेंगे। यदि कोई मनोवैज्ञानिक इस वचन को कार्य-कारण सम्बन्ध के नियम पर कसकर दुःख और काम-क्लेश का परस्पर सम्बन्ध सिद्ध कर दे, तो निस्सन्देह बहुत बड़ी खोज कही जाएगी।

पूर्वोक्त सब उल्लेख विशेषतया संशोधनीय हैं। अतः इन सभी बातों का ऊपर सविस्तर निर्देश कर दिया गया है। काम-क्लेश और सुख प्राप्ति—इन दोनों के सम्बन्ध में जो प्रश्न उठाये गए हैं, उनका समुचित उत्तर हमारे पास तो नहीं है। अधिक प्रज्ञा-संपन्न संशोधक और आगम वचनों के विशेषज्ञ जो जैनाचार्य अथवा श्रमण वर्ग हैं उनसे नम्र भाव से विनती है कि वे सब मिलकर पारस्परिक विचार विमर्श करके इस बात का निर्णयात्मक संशोधन जनता के सामने रखेंगे तो हमारे ऊपर बहुत बड़ा अनुग्रह होगा और साथ ही जनता को मार्ग-दर्शन भी मिलेगा। वर्तमान में चन्द्रमा तक पहुँचने वाले इस विज्ञान प्रधान युग में इन सब बातों का विचार अवश्य होना ही चाहिए, अन्यथा आगम के ये सब वचन खतरे में हैं—यह बात निश्चित है।

धर्म रत्न प्रकरण मे

श्री शान्ति सूरि जी द्वारा रचित 'धमरत्न प्रकरण' तथा उस पर स्वोपज्ञवृत्ति भावनगर आत्मानन्द सभा से प्रकाशित हुई है। यह ग्रन्थ प्राय बारहवी शताब्दी (विक्रमीय) मे बना है। उसमे आगमो के वचन रूप सूत्रो का विश्लेषण किया गया है। जो इस प्रकार है—

विधि सूत्र, वर्णक सूत्र, भय सूत्र, उत्सग सूत्र, अपवाद सूत्र, उत्सर्ग अपवादोभय सूत्र—इस प्रकार जैन सिद्धान्त मे बहुविध सूत्र हैं। इन गम्भीर भाव वाले सूत्रो को ठीक प्रकार से समझना चाहिए।"—(धमरत्न प्रकरण, गा० १०६ पृ० ६७)

इसकी वृत्ति मे ये सब प्रकार के सूत्रो के उदाहरण भी दिये गए हैं। जैसे—

वर्णक-सूत्र—ये चरितानुवाद रूप हैं। जैसे—'द्रौपदी ने पाँच पुरुषो को वरमाला पहिनाई—यह वचन वर्णक सूत्र है तथा नगर आदि के सभी वर्णन वर्णक सूत्र के अन्तर्गत समझने चाहिए।

भय सूत्र—नारकादिक के दु ख दर्शक वचन भय सूत्र हैं। नरकों में माँस, रुधिर आदि का जो वर्णन है, वह प्रसिद्धि मात्र से है, और भय हेतु है। वह मास और रुधिर वैक्रिय होने से वास्तव में वहाँ नही है। अथवा दु ख विपाक के प्रकरण मे (विपाक सूत्र मे) पापियो के जो चरित्र वर्णित किये हैं, वे सब भय सूत्र हैं। इस प्रकार भय बताने से प्राणी को पाप से हट जाने का सभव है।

सूत्रो के उपयुक्त विश्लेषण से कल्पना हो सकती है कि सुखादिक का प्रलोभन बताने से प्राणी का पुण्य कर्म मे प्रवृति होना सभव है, अथवा सयमादिक साधना में जो भयकर कष्ट सहने पडते हैं, उनमें स्थिरता रहे और जो लोग जगत् में असक्लिष्ट वृत्ति के साथ विशेष दु खी हैं, उनको दु ख सहने में थोडा-बहुत सहारा हो, सात्वना मिले। अत भय सूत्रो की तरह ये स्वर्गादिक के सूत्र प्रलोभन-सूत्र हो सकते हैं—ऐसी कल्पना करना अशक्य नहीं।

जिस प्रकार नरको में मास, रुधिर आदि वैक्रिय है, उसी प्रकार स्वग की समस्त सुख-सामग्री भी वैक्रिय ही है। वहाँ वस्त्र हैं, आभूषण हैं, पुस्तक है, स्याही है, कलम है, स्याहीदान हैं, विविध प्रकार के क्रीडा स्थल हैं, कु डल हैं, जूते हैं, पात्र हैं, छत्र हैं, चँवर है, आदि अनेक प्रकार के उपकरण हैं। वहाँ उन उपकरणों को बनाने के लिए कोई किसी भी प्रकार का श्रम करता है, ऐसा कोई उल्लेख शास्त्र में नही मिलता। तथा उपकरणो के उपादानभूत कपास, रूई, कागज, स्वर्ण, हीरा, पन्ना, माणिक, लकडी, लोहा, चमडा, चमरी गाय की पूँछ आदि भी वहाँ पर नहीं है। फिर भी ये सब वैक्रिय हैं, अत नरक के मास और रुधिर की तरह प्रसिद्धि मात्र से हैं। वास्तव में वे क्या हैं? यह समझ में नहीं आता। तथा वहाँ स्वर्ग मे मकान है, उसमे कमरे भी हैं, छप्पर भी है और छप्पर के ऊपर खपेडा तथा कवेलू भी है। मकान के अन्दर खूँटे, छींके आदि सामग्री भी है। यह सम्पूर्ण वर्णन जैन सूत्रो मे विमान के वर्णन के अवसर पर किया गया है। स्वर्ग में मात्र जो कुछ भी श्रम है, वह भोगार्थ है, और भोग के अतिरिक्त वहाँ सब अकर्मण्य हैं—यह है हमारे स्वर्ग के सुख समूह का आदर्श श्रम-विहीनास्वथा स्वर्ग का अथवा पुण्य के परिपाक का नतीजा। परन्तु यह सब वैक्रिय ही है, अत उपदेश पद के कथनानुसार यह सब उल्लेख क्या प्रलोभक-सूत्र रूप होना समुचित नहीं है? जिस प्रकार दु ख के

वश से प्राणी का पाप प्रवृत्ति से हटना संभव है ठीक उसी प्रकार पुण्य के प्रलोभन से प्राणी का पुण्य-कार्य की ओर प्रवर्तन होना भी सम्भव है। ऐसी कल्पना क्या उपदेशपद के विवरण से होना सम्भव नहीं है ?

धन्य का देह-दमन :

धन्य का देह-दमन अनुत्तरोपपातिक में धन्यकुमार के शरीर-दमन का ही विविध रूप से मार्मिक वर्णन है। उसके शरीर के शुष्क हुए अवयवों के वर्णन में जो-जो उपमाएँ दी गई हैं, वे अद्भुत हैं और पूर्णतः भाव समर्थक हैं। इस वर्णन को पढ़ने से हमारे सामने धन्यकुमार के अत्यन्त शुष्क शरीर का पूरा चित्र खड़ा हो जाता है।

बुद्ध का देह-दमन :

बौद्ध परम्परा के पिटक ग्रन्थ मज्झिमनिकाय के बारहवें महासीहनाद सुत्त में (कण्डिका २ से २८ तक) भगवान् बुद्ध के देह दमन का जो वर्णन है, वह तो हमारे धन्य मुनि के देह-दमन से भी विलक्षण घोरातिघोर है। धन्य मुनि ने तो मात्र उपवास अर्थात् निरशन—भोजन त्याग ही विशेषतः तप-रूप से पालन किया है, धन्य मुनि ने भगवान् महावीर की अनुमति पाकर यह नियम लिया था कि—यावत् जीवन दो-दो उपवास; अर्थात्—षष्ठ तप करते रहना तथा पारणे में आयंबिल करना। आयंबिल का आशय यह है कि—जिस तप में घी दूध तेल आदि स्निग्ध चीजों का तथा अन्य मिरच-मसालों का प्रयोग न हो तथा साथ ही खाद्य और नमक तक भी न हो ऐसा आहार—जिसमें उबाले हुए चावल आदि अन्न हों—लेने का नियम। धन्य कुमार का यह आयंबिल भी विशेष प्रकार का था।

उन्होंने ऐसा नियम लिया था कि आयंबिल में भी वही अन्न लूँगा जो सदोष हाथ से दिया गया हो तथा जो अन्न फेंकने लायक हो और जिस अन्न को अन्य श्रमण ब्राह्मण अतिथि और याचक लेना पसन्द न करे—ऐसा ही अन्न लूँगा। इस प्रकार पारणा करने का धन्य मुनि का नियम था। जीवन का अन्त निकट जानकर धन्य मुनि ने पारणा का त्याग करके एक मास तक सम्पूर्ण अनशन व्रत स्वीकार किया था। धन्य कुमार का दीक्षित जीवन नव मास का था; अर्थात्—उक्त घोरातिघोर तप उसने नव मास तक किया था। इस तप की अपेक्षा बुद्ध भगवान् का जो तप वर्णित किया गया है, वह इस प्रकार है—

प्रारम्भ में बुद्ध अचेलक नग्न रहे, कुल्माषाहार रहे। 'आइए' कहने पर वहाँ भिक्षार्थ नहीं जाते थे 'ठहरिए' कहने पर वहाँ भिक्षार्थ नहीं जाते थे सामने लाई हुई भिक्षा नहीं लेते थे औद्देशिक भिक्षा नहीं लेते थे निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते थे, कुम्भी मुख से तथा कलोपी के मुख से भिक्षा नहीं लेते थे। एक ही घर से निर्वाह करते थे। एक एक उपवास करते दो-दो उपवास करते सप्त-भक्त उपवास करते पक्ष-पक्ष उपवास करते। केवल शाक-भक्षी रहे आचाम-भक्षी रहे (आचाम—मांड-ओसामण) कण-भक्षी तुसभक्षी गोमय (गोबर) भक्षी रहे, चमड़े को साफ करने वाले चमारों के द्वारा फेंक दिये हों ऐसे चमड़े के टुकड़ों को भी चबाते रहे, दाढ़ी-मूँछ और सिर के केशों का लोच करते रहे, बहुत समय तक खड़े ही रहते। काँटों में ही सोते रहते थे। जल-आरोहण करते रहे। यहाँ तक कि जल के बिन्दु से भी मुझे दया आने लगी कि जल में रहे हुए इन छोटे-छोटे जीवों को मेरे से दुःख न हो। छोटे बछड़ों का मूत्र पीते रहे। यहाँ तक कि अपने मूत्र और करीष (पुरीष) को खाते-पीते रहे, श्मशान में रहते और छोटे मुर्दों की हड्डियों

का उपचार (चिकित्सा) करते थे। [illegible]। [illegible], कानों में सलाका (सलाई) डालते रहे, [illegible] की परम्परा थी। पर [illegible] से शान्ति नहीं पाई। कभी-कभी [illegible] पेट [illegible] अर्थात् [illegible]। [illegible] नहीं समझता कि उस समय का पेट [illegible] था—उस समय भी [illegible] होता था।

इस प्रकार से [illegible] भोजन करने से मैं एक दम विवर्ण (काला) हो गया। मेरी पांसुली (पसली) पुराने छप्पर की बल्ली की तरह प्रकट [illegible] हो गई। [illegible] कुएँ में तारागण का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, उसी तरह मेरी आँख [illegible] हो गई। जैसे कच्चा कद्दू [illegible] से म्लान हो जाता है, उसी भांति मेरा सिर भी [illegible] हो गया। जब मैं पेट का स्पर्श करता हूँ, तब मेरे हाथ में पीठ आती है, पीठ की हड्डियाँ आ जाती [illegible]। ऐसी कठोर तपस्या की, जिससे मल मूत्र विसर्जन के लिए जाने पर वहीं उलटा होकर गिर पड़ता। मेरे [illegible] रोम [illegible] गिर पड़े थे। कभी कभी आहार में एक ही तन्दुल (चावल) से निर्वाह किया—आदि प्रकार से भगवान् बुद्ध की तपस्या का वर्णन आता है।

ऐसे कठोरातिकठोर एवं घोरातिघोर तप करने वाले बुद्ध की पुरानी मूर्ति भी अभी मिली है, जो ऐसी बैठी हुई है कि जिसकी सब पसलियाँ हम बराबर गिन सकते हैं, और पेट के भाग को उंडा, खड्डा जैसा हम देख भी सकते हैं। ऐसी कठोरतम तपस्या बुद्ध ने छह वर्ष तक की। दूसरी ओर कुमार धन्य मुनि ने दो दो उपवास का व्रत नव मास तक किया। इस प्रकार इन दोनों तप. साधना का तारतम्य जानने योग्य है। इस वर्णन से मालूम होता है कि उस समय में इस प्रकार के घोरातिघोर देह दमन की प्रथा प्रचलित थी।

जैन परम्परा में तप के दो प्रकार प्राचीन काल से, भगवत महावीर के समय से भी आगे से चले आते हैं। वे इस प्रकार हैं—बाह्य तप, और आन्तर तप।

बाह्य तप—इच्छा पूर्वक अनशन, ऊनोदरिका (पेट को थोड़ा ऊन रखना, अर्थात् कम खाना) वृत्ति संक्षेप (खाने पीने, सुनने-सूँघने, देखने-स्पर्शने, गमनागमन आदि की वृत्तियों को कम) करना, रस परि त्याग (इच्छा पूर्वक रसों का त्याग करना), सहनशील बनने के लिए काय-क्लेश सहन करना, और संलीनता (विषय वृत्ति उत्तेजित न हो, उसके लिए अंगों की विविध चेष्टाओं को रोकना)। इस प्रकार बाह्य तप छह प्रकार का है।

आन्तर तप—यह तप छह प्रकार का है—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, और कायोत्सर्ग। इन छहों प्रकारों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

प्रायश्चित्त—किए हुए दोष से होने वाले पाप-संस्कार के निवारण के लिए गुरु के सम्मुख उक्त दोष को प्रकट करके आलोचना करनी, और गुरु द्वारा दी हुई आलोचना के अनुसार शारीरिक तथा मानसिक अनुष्ठान करना।

विनय—माननीय गुणवंत जनों (स्त्री या पुरुष) के प्रति मन, वचन और कर्म (शरीर) से नम्र होकर श्रद्धा भाव से व्यवहार करना।

वैयावृत्त्य—माननीय पुरुषों गुरुजन बूढ़े लोग रोगपीड़ित लोग आदि की सेवा-भक्ति करना।

स्वाध्याय—सद् शास्त्रों की वाचना लेना उस सम्बन्ध में प्रश्न करना ऐसे शास्त्र-वचनों का बार-बार मनन और चिन्तन करना और जीवन में संयम शुद्धि को स्थिर रखने वाली कथाओं द्वारा सद् शास्त्रों का अभ्यास करना।

ध्यान—दुष्ट विचारों को रोकना और सद् विचारों की वृद्धि करना तथा शुद्ध संकल्पों की वृद्धि हो इस हेतु से मानसिक व्यापार करना।

उत्सर्ग अथवा कायोत्सर्ग :

आत्मा में जो बुरे संकल्प जमे हुए हैं उनको निकालने के लिए और चित्त की शुद्धि के लिए शरीर को क्लेश देने की आवश्यकता अनुभव करके शरीर की ममता दूर कर शरीर को क्लेश देना और उस क्लेश को शान्ति एवं ऐच्छिक वृत्ति से सहन करना।

जब घोड़ा गाड़ी को बराबर ठीक रूप से चला रहा है तब उसे दण्ड देने की जरूरत नहीं। परन्तु जब घोड़ा तूफानी बनकर। अर्थात् किसी प्रकार के आवेश में आकर गाड़ी को उन्मार्ग (उलटे रास्ते) में ले जाता है, तब उसको दण्ड देने की आवश्यकता अनिवार्य है। ठीक इसी न्यायोक्ति से शरीर तथा इन्द्रियाँ आत्मा को जब तक हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति नहीं करतीं अर्थात् आत्म-शुद्धि में सहायक बनी रहती हैं तब तक उनको दण्ड देने की जरूरत नहीं दीखती। परन्तु जब वे उन्मार्गी बन कर आत्मा को उन्मार्ग की ओर खींचने के लिए तत्पर हो जाती हैं, तब उनको कठोर-से-कठोर दण्ड देना जरूरी है। इस प्रकार बाह्य तप और आन्तर तप का परस्पर सम्बन्ध है, और ऐसा ही तप आत्म-शोधक एवं कर्म क्षयकर बन सकता है। यह है जिन वाणी का सच्चा निष्कर्ष।

बाह्य और आभ्यन्तर तप :

अब हमें यह विचार करना है कि इस मूल सूत्र में अथवा अन्य सूत्रों में भी जहाँ जहाँ तप का वर्णन किया गया है वहाँ सर्वत्र बड़ी-बड़ी व्याख्याकारियों से बाह्य तप का ही वर्णन जोर शोर से किया गया है। परन्तु उतना विस्तृत वर्णन आन्तर तप का कहीं भी देखने में नहीं आता। आखिर, इसका क्या कारण है? और इसमें सूत्रकार की क्या दृष्टि है?

मालूम होता है कि लोग प्रायः स्थूल-रुचि के होते हैं। जहाँ वे इस प्रकार के देह-दमन नहीं पाते वहाँ तपस्या ऐसा नहीं समझते हैं। साधक कोटि में आने वाला कोई भी मानव आन्तर तपस्वी होने से तपोधन तो जरूर है परन्तु आम जनता उसको तपस्वी नहीं समझती और उसका अनुकरण एवं अनुसरण भी नहीं कर सकती। और यह भी सम्भव है कि ऐसे तपोधनी को देखकर आम जनता बाह्य तप को भी छोड़ दे। यद्यपि केवल बाह्य तप किसी भी दृष्टि से काम का तो नहीं है फिर भी विशेष प्रकार के जिज्ञासुओं और मुमुक्षुओं को कभी कभी बाह्य तप भी आन्तर तप की ओर प्रेरित करने का निमित्त बन जाता है अतः यह तप (दृश्यमान तप) अनुकरणीय हो अनुसरणीय हो इस निमित्त से मालूम होता है कि सूत्रकार ने बाह्य तप का भी इतना विस्तृत वर्णन किया है और आन्तर तप का उतना वर्णन नहीं किया है, तो भी आन्तर तप का वर्णन नहीं किया है, ऐसी बात तो नहीं है। बात ऐसी है कि आन्तर तप का

वस्तुत लम्बी लम्बी यात्राओं में कभी भी न रहा हो सकता, तथापि [illegible] बाह्य तप का [illegible], और आन्तर वस्तुत आन्तर ही है। आन्तर का [illegible] किया जाना सम्भव नहीं है। धन्यकुमार के वृत्तान्त में उनके आन्तर तप का वर्णन नहीं है—ऐसा नहीं है। यह वर्णन परिमित शब्दों में इस प्रकार किया गया है —

"तएणं से धण्णो अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अविसादी अपरितंतजोगी जयण-जोग चरित्ते अहापज्जत्तं समुदाणं (समुदानं) पडिगाहेइ।" — अनुत्तरोपपातिक

कभी कभी धन्यकुमार को अपनी प्रतिज्ञानुसार अन्न-पान नहीं मिलता था, अथवा यदि कभी अन्न मिल गया, तो पान (पानी) न मिला और कभी पानी मिल गया तो अन्न न मिला। ऐसी परिस्थिति में उसने अपनी प्रतिज्ञा व तपस्या में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने दी और वह इन प्रतिकूल संयोगों में भी दीन नहीं बना, चञ्चल मन नहीं बना, खिन्न नहीं बना। उसकी अविच्छिन्न चित्त शुद्धि के साधन में भी उनका कोई प्रयत्न कम नहीं हुआ और क्रिया [illegible] सब प्रकार सतत रहे। और यतनापूर्ण एवं चेष्टा-प्रधान उसकी मानसिक एवं शारीरिक सभी क्रियाएँ बराबर चलती रहीं। उसका निर्धारित क्रिया क्रम न तो कभी मन्द हुआ, न कभी कम हुआ। इस प्रकार इस दशा में साथ धन्यकुमार का आन्तर तप भी सतत चलता रहा। धन्यकुमार केवल देह दमी ही नहीं था, बल्कि उसके देह-दमन का प्रभाव उसके अन्तर तक पहुँच चुका था और [illegible] कठोरतम दशा में वह लेश-मात्र व्याकुल नहीं हुआ था।

हम लोग भी यदि इस प्रकार बाह्य तपस्वी एवं आन्तर-तपस्वी धन्यकुमार का अनुकरण और अनुसरण करें, तब ही हमारी तपस्या साधक हो सकती है, अन्यथा नहीं। क्योंकि अकेले देह-दमन और साथ में लगा हुआ वर्तमान उत्सवों का तथा खान पान का आडम्बर निकम्मा है और बाधक भी है।

सात्त्विक तपस्वी साधक तप के प्रारम्भ की बात का कभी भी प्रगट नहीं करते। तप के पूर्व में खूब खाते भी नहीं हैं, और तप के पीछे भी खान-पान के लिए इतने उत्सुक नहीं होते। मिष्टान्न तथा विविध प्रकार के मधुर भोजन की कामना भी नहीं करते। भोजन सम्बन्धी विविध प्रकार व्यञ्जनों के प्रति यदि आसक्ति बनी रहती है, और साथ में तप साधना का कार्यक्रम भी चलता है, तो इस प्रकार का प्रतिकूल कार्य क्रम कभी भी तप नहीं कहलाता। और केवल देह कष्ट तथा विवेक शून्य दैहिक क्रियाएँ चाहे कितनी भी लम्बी हों, तब भी तप नहीं बन सकता। अपनी तपस्या के कार्य-क्रम को ढोल पीट कर प्रकट करने वाले को सूत्रकृताग सूत्र में विपरीत मार्गगामी कहा है। तप के समय में किसी प्रकार की मन क्रीडा करना, खान-पान की चिन्ता करना और खान पान में ऐसी आस्था रखना कि सुबह कब हो और मैं कब खा पी लूँ, आदि मोह जनित विचार करने वाले का तप एक प्रकार का मिथ्याचार है। अतएव यह बात ध्यान में रखनी चाहिए।

हमारे समाज में केवल बाह्य तप का अधिकाधिक प्रचार है। इस परिस्थिति में तप के सम्बन्ध में शास्त्रीय विचार जिस प्रकार के मिलते हैं, उनका चिन्तन और मनन अधिक करना चाहिए। वे विचार इस प्रकार है—

"ज्ञानमेव बुधा प्राहु कर्मणा तापनात् तप ।
तदाभ्यान्तरमेवेष्ट तदुपबृंहकम" ॥ १ ॥

आनुस्रोतसिकी वृत्ति र्बालानां सुखशीलता।
प्रातिस्रोतसिकी वृत्तिर्ज्ञानिनां परमं तपः॥
धनार्थिनां यथा नास्ति शीततापादि दुस्सहम्।
तथा भव-विरक्तानां तत्त्व-ज्ञानार्थिनामपि॥
सदुपाय प्रवृत्तानां मुपेयमधुरत्वतः।
ज्ञानिनां नित्यमानन्दवृद्धिरेव तपस्विनाम्॥
यत्र ब्रह्म जिनार्चा च कषायाणां तथा हतिः।
सानुबन्धा जिनाज्ञा च तत् तपः शुद्धमिष्यते॥
तदेव हि तपः कार्यं दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत्।
येन योगा न हीयन्ते क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि च॥—ज्ञानसार-तपाष्टक

"ज्ञान ही सांसारिक संस्कारों को तप्त करके नष्ट कर देता है, अतः यह ज्ञान ही आभ्यन्तर तप है और जो देह-दमन रूप बाह्य तप ऐसे ज्ञान में सहायक हो सकता है वही बाह्य तप है।

अज्ञानी लोगों की प्रवृत्ति प्रवाहानुसारी सुखशील होती है और ज्ञानियों की प्रवृत्ति प्रातिस्रोतसिकी अर्थात्—पूर में उमड़ती हुई नदी में प्रवाहानुसार नहीं परन्तु प्रवाह के प्रतिकूल तैरने जैसी होती है और ऐसी ही प्रवृत्ति तप है।

जिस प्रकार धनार्थी मनुष्य को शीत, ताप, भूख आदि दुस्सह नहीं लगते ठीक उसी प्रकार तत्त्व ज्ञान के अर्थी साधक को भी किसी प्रकार का देह कष्ट दुस्सह नहीं होता।

ठीक प्रकार से सत्साधन को पाए हुए तपस्वी ज्ञानी जन को अपने ध्येय के माधुर्य का अनुभव हो जाने पर देह-दमन भी आनन्द की वृद्धि करने वाला होता है।

जिस तप में बाह्य आन्तर ब्रह्मचर्य होता है वीतराग जिन भगवान के अनुकरण में सहायरूप उनकी पूजा अर्चना होती है, कषायों का नाश होता दिखाई देता है और सानुबंध जिनाज्ञा अर्थात्—ध्येयानुसारी जिनाज्ञा के साथ सतत सम्बन्ध रहता है, वह तप शुद्ध कहा जाता है।

वही तप करना चाहिए, जिसको करने से दुर्ध्यान न हो सत्साधना के लिए आवश्यक शारीरिक प्रवृत्तियों का नाश न हो तथा कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का भी नाश न हो।

तथा—

'मूलोत्तर गुणश्रेणि प्राज्यसाम्राज्य सिद्धये।
बाह्यमाभ्यन्तरं चैव तपः कुर्यान् महामुनिः॥"

मूल गुणों की प्राप्ति के लिए और मूल गुण के पोषक ऐसे उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिए महामुनि बाह्य और आभ्यन्तर तप को करे। इस श्लोक में प्रयुक्त 'महामुनि' शब्द ध्यान में रखने योग्य है। इसके अर्थ में मात्र-साधक रूप श्रावक पद तो है ही नहीं और मुनि पद भी नहीं है, किन्तु 'महामुनि' शब्द ग्रन्थकार ने दिया हुआ है।

तप और भोजन।

अन्न-पान आदि का मात्र त्याग करने से शरीर अशक्त हो जाता है और, शरीर में अशक्ति आने से केवल बाह्य दृष्टि से विषय हम से छूट जाते हैं। वास्तव में उचित रीति से इनको

विषय त्याग कैसे कहा जाए ? क्योंकि जब हम तप का त्याग करके फिर भोजनादिक व्यवहार मे प्रवृत्त होते हैं, तब हमारे चित्त में बैठी हुई विषय वृत्ति हमको घेर लेती है और हम फिर बडे जोरों से विषयों के द्वारा आक्रान्त होते हैं। यह अनुभव प्राय सभी तप करने वालों में से किसको नहीं है ? अधिक लम्बी तपस्या की तो बात ही छोड दीजिए, परन्तु जो लोग एक उपवास, छट्ठ, अट्ठम करते हैं, वे भी धारणा के दिन में कैसे डटकर भोजन करते हैं ? और शरीर में वायु-वर्धक तथा पचने मे भारी विविध प्रकार के ऐसे पदार्थ खाते हैं कि भूख ही न लगे या कम लगे।

बताइए, सच्चे अर्थ में इसको बाह्य तप कैसे कहा जाए ? जो तप आन्तर तप का पोषक एव सहायक हो वही बाह्य तप की व्याख्या में आ सकता है। रोजा (रमजान) रखने वाले लोग चाँद को देखते ही सारी रात खाते रहते हैं। इसी प्रकार हम लोग तप करने के पूर्व दिन साय भोजन इसी रीति मे कर रहे हैं, और पारणे के दिन भी भोजन के लिए विह्वल हो उठते हैं ऐसे तप को मिथ्याचार ही कहा जाएगा, क्योंकि इस प्रकार के तप मे चित्त शुद्धि अंशमात्र भी नही होती और विषय वासना भी कम नही होती। जिससे भूख न लगे, ऐसे खाद्य पदार्थ खाने के बाद तप करना और क्लोरोफोर्म या बेहोशी की औषधि सेवन करने के बाद तप करना - दानों रीति एक समान हैं। बेहोशी की दशा मे जो क्रिया की जाती है, उसका पारमार्थिक परिणाम, अर्थात्—चित्त शुद्धि एव आत्मभान रूप नतीजा कैसे प्रकट हो सकता है ? इस सम्बन्ध मे कहा भी गया है कि भावशून्य प्रवृत्ति का कोई फल नही हो सकता—
"यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भाव शून्या ।"

तप एक रसायन

तपस्या करके क्षमा, सहिष्णुता, सतोप, अलोभ, अद्वेप आदि जो गुण आत्म निष्ठ सहज ह, उनको भी प्रकाश में लाना है। यदि लम्बे अरसे तक तप करने पर भी इनमें से एक भी गुण हम न पा सकें, तो समझना चाहिए कि तप का कोई दोप नहीं, अपितु तप करने वाले पात्र ही अयोग्य हैं—ऐसा समझना चाहिए। वस्तुत रसायन बल-वर्धक और रोग निवारक होता है, परन्तु रसायन खाने वाला यदि सेवन विधि के विपरीत उसका प्रयोग करेगा, तो वही रसायन जीवन का नाश कर देता है और अनेक रोगों का उत्पादक भी बन जाता है। इसी प्रकार तप रूप रसायन को सेवन करने वाले यदि विवेक, विचार एव आन्तर वृत्ति का ख्याल किए बिना केवल काय-क्लेश के लिए तप का प्रयोग करेंगे, तो आत्म-हत्या के सिवाय उसका दूसरा नतीजा क्या हो सकता है ? अपने मन को मनाने के लिए यदि हम यह मान लें कि स्वर्ग तो मिलेगा ही, किन्तु यह मात्र मन को सतोष देने के लिए ही होगा। वास्तव मे ऐसे काय-क्लेश से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता—यह बात जैन प्रवचन बडे उद्घोप से कह रहा है।

काय-क्लेश से हानि

केवल काय-क्लेश से शरीर अशक्त हो जाता है, हाथ-पैर आदि अवयव निष्क्रिय हो जाते हैं। इस परिस्थिति में—विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सग रूप आन्तर तप हो ही नहीं सकता—यह कहने को जरूरत है क्या ? यह तो अनुभव सिद्ध है। आन्तर तप तो नही होता, बल्कि काय-क्लेश करने वाला अपने को तपस्वी मानकर दूसरे लोगो से सेवा लेता है। कर्त्तव्य की दृष्टि से जिसे

दूसरे को सेवा करनी चाहिए परन्तु वह दूसरे की सेवा लेता है, तो वह विपरीत बात केवल काय-क्लेश में अन्यथा है अतः काय-क्लेश केवल विक्षेप विचारणीय है। आत्यंतिक देह-दमन के विषय में और भी यह एक बात विशेष चिन्तनीय है—

अन्न में प्राण :

धारणा-शक्ति स्मृति-शक्ति, अध्ययन वृत्ति अध्यापन कार्य आदि—ज्ञान संरक्षण तथा ज्ञानार्जन के कार्य शरीर, मन तथा बुद्धि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। इतना ही नहीं शरीर आदि के साथ इन कार्यों का अविनाभाव सम्बन्ध है—ऐसा कहना भी अत्युक्ति न होगी। देखिए प्राचीन समय में जब दुर्भिक्ष (अकाल) पड़े तब हमारे श्रमण लोग स्वाध्याय परावर्तना आदि ज्ञान संरक्षण की कोई प्रवृत्ति नहीं कर सके। इसीलिए जैन आगम-साहित्य विस्मृत हो गया और उसमें कहीं-कहीं अखण्डता नहीं रह गयी। फिर जब सुभिक्ष हुआ और श्रमणों को समाधि आहार मिलना सुलभ हुआ तब स्मृति में जितना था उसका संकलन करके वलभी नगर में आगमों को पुस्तकारूढ़ किया गया। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि धारणा शक्ति स्मृति शक्ति अध्ययन आदि प्रवृत्तियों का सम्बन्ध समाधिक सामग्री के साथ बड़ा घनिष्ठ है अतः लम्बे समय तक निराहार रहने से विद्यार्जन की तथा विद्या संरक्षण की एक भी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अस्तु, ऐसा आत्यंतिक देह-दमन अनिवार्य नहीं जिससे हमारा विद्यार्जन का सामर्थ्य नष्ट हो जाए और हमारा स्वाध्याय का सामर्थ्य लुप्त हो जाए।

इस सम्बन्ध में छान्दोग्य उपनिषद् के सातवें अध्याय के सातवें खण्ड में आत्यंतिक अन्न-त्याग करने से मानसिक हानि किस प्रकार होती है? इस विषय को एक कथा में कहा है—

'जिसको अन्न की प्राप्ति होती है वही पुरुष शक्ति सम्पन्न होने से 'द्रष्टा' है। — आदि अनेक विवेचनात्मक कथन हैं। इन्हें सविस्तार जानने के लिए उक्त सारा प्रकरण देखना आवश्यक है।

तप और सेवा :

बाह्य और आन्तर तप से जिस प्रकार अनशन आदि आते हैं ठीक उसी प्रकार सारे समाज के श्रेयस् के लिए सच्चे अर्थ में जो प्रवृत्ति होती है वह भी यदि निरपेक्ष प्रेम और निरपेक्ष सहानुभूति से होगी तो उसकी गिनती भी शुद्ध तप में हो सकती है। कोई मनुष्य अपने कुटुम्ब के लिए अथवा पड़ोसी के लिए निरपेक्ष प्रेम और निरपेक्ष सहानुभूति से कल्याणकारी प्रवृत्ति करता है अर्थात्—रोगी की परिचर्या निरक्षरता निवारण असहाय सेवा आदि विविध प्रवृत्ति करता है, तो वह भी तपस्वी ही है ऐसा विचार जैन प्रवचन में है क्योंकि इस प्रकार की प्रवृत्ति में सच्चे बाह्य तप तथा सच्चे आन्तर तप के लक्षण समाए हैं और वे बराबर विद्यमान हैं। केवल उपवासादिक तप के बदले में वर्तमान व्यापक दृष्टि को लक्ष्य में रखकर 'बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय' प्रवृत्ति करना विशेषतः अच्छी है।

परन्तु इसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी प्रवृत्ति अपने किसी स्वार्थ से न हो किसी प्रकार के लालच से न हो न प्रतिष्ठा के लिए और न अधिकार पाने के लिए हो। ऐसी प्रवृत्ति निरपेक्ष रूप से पूर्ण सहानुभूति के साथ करने से अहिंसा वृत्ति एवं करुणा वृत्ति बढ़ती है और चित्त शुद्ध बनकर सब प्राणियों के साथ और अन्त में सब आत्माओं के साथ सम-भाव से रहने-सहने की भूमिका तक पहुँच जाता है। और यही तो वीतराग जिनदेव का लक्ष्य रहा है। इस दृष्टि से हमारे तपस्वियों की तरह लोकमान्य

देशबन्धु, लालाजी और महात्मा जी भी सच्चे अर्थ मे तपस्वी हैं—इसमे कोई शक नही है। ऐसी प्रवृत्तियो मे हमारे बाह्य और आन्तर तप के समस्त लक्षण होते हैं। इस सम्बन्ध मे आवश्यक वृत्ति म कहा गया है कि—

"किं भन्ते ! जे गिलाण पडियरइ से धन्ने उदाहु जे तुम दसणेण पडिवज्जइ ?"
"गोयमा ! जे गिलाण पडियरइ।"
"से केणट्ठेण भन्ते एव वुच्चइ ?"

जो गिलाण पडियरइ से म दंसणेण पडिवज्जइ, जे म दसणेण पडिवज्जइ से गिलाणं पडियरइत्ति। आणाकरणसार खु अरहताण दसण, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ–जे गिलाण पडियरइ से म पडिवज्जइ, जे म पडिवज्जइ से गिलाण पडिवज्जइ।

— (आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, पृ० ६६१-६६२)

गौतम भगवंत से पूछते हैं कि—क्या भगवन् ! जो एक मनुष्य ग्लान की सेवा कर रहा है, वह धन्य है ? अथवा जो कोई मनुष्य दर्शन द्वारा आपको स्वीकार कर रहा है, वह धन्य है ? भगवत उत्तर देते हैं कि—हे गौतम ! जो मनुष्य ग्लान की सेवा कर है, वह धन्य है। गौतम फिर पूछते हैं कि—हे भगवन् ! ऐसा आप किस हेतु से कह रहे हैं ? भगवत फरमाते हैं कि – हे गौमत ! जो मनुष्य ग्लान की सेवा कर रहा है, वह दर्शन द्वारा मेरा स्वीकार कर रहा है, और जो मनुष्य दर्शन द्वारा मेरा स्वीकार कर रहा है, वह ग्लान की सेवा कर रहा है, क्योकि अरिहन्त का दर्शन अरिहंत की आज्ञा का पालन करना है। अर्थात्—अरिहन के दर्शन का सार है—अरिहत की आज्ञा का पालन करना। इस कारण हे गौतम ! मैंने ऐसा कहा कि जो मनुष्य ग्लान की सेवा कर रहा है, वह दर्शन से मेरा स्वीकार रहा है।

इस प्रकार परम पवित्र धन्य मुनि के विशद उज्ज्वल चरित्र को पढकर जो थोडे बहुत विचार आए हैं, वे ऊपर रख दिए हैं। पाठक-गण से सविनय प्रार्थना है कि वे इन विचारो मे से सार-सार को तो ले लें, और जो असार-असार है, उसको छोड दें। इन विचारो के पढते समय सशोधक और विश्लेषक तटस्थ-वृत्ति रखेंगे, तभी ठीक समझ में आएगा। मेरी कोई गलती दिख पडे, तो जरूर सूचित करें, यह भी सानुरोध निवेदन है।

अन्तिम बात

श्री विजय मुनि जी ने अनुत्तरोपपातिक का परिचय लिखने के लिए जो मुझे अवसर दिया, उसके लिए वे सविशेष धन्यवाद के पात्र हैं। मेरा और उनका ऐसा घनिष्ठ धर्म स्नेह जुड गया है, कि मैं इस समय अधिक प्रवृत्ति में था, तो भी इस परिचय लिखने की सूचना टाल नही सका, प्रत्युत विशेष प्रेम के साथ उस सूचना को मैं यथाशक्य अमल कर सका हूँ। अत मैं अपने आप को कृतार्थ समझता हूँ।

१२/ब, भारती निवास सोसायटी
अहमदाबाद — ६

पण्डित बेचरदास दोशी

अणुत्तरोववाइय दसाओ

अनुत्तरोपपातिक दशा

पढमो वग्गो

: १ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। अज्जसुहम्मस्स समोसरणं। परिसा निग्गया [जाव] जम्बू पज्जुवासइ [जाव] एवं वयासी :—

: २ :

"जइ णं भंते! समणेणं [जाव] सपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते! अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं [जाव] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?"

: ३ :

तए णं से सुहम्मे अणगारे जम्बुं अणगारं एवं वयासी :—

"एवं खलु जम्बू! समणेणं [जाव] संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तिण्णि वग्गा पण्णत्ता।"

"जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तओ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं [जाव] संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता?"

: ४ :

"एवं खलु जम्बू! समणेणं [जाव] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा :—

"जालि-मयालि-उवयाली पुरिससेणे य वारिसेणे य।
दीहदंते य लट्ठदंते य वेहल्ले वेहायसे अभए इ य कुमारे॥"

: ५ :

"जइ णं भंते! समणेणं [जाव] संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं [जाव] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?।"

प्रथम वर्ग

१

उस काल और उस समय में राजगृह नामक एक नगर था। आर्य सुधर्मा का वहाँ आगमन हुआ। धर्म-देशना सुनने के लिए परिषदा आई और धर्मोपदेश सुन कर लौट गई। यावत् इस बीच जम्बू आर्य सुधर्मा की सेवा करने लगे। यावत् और उनसे इस प्रकार कहने लगे —

२

"भन्ते! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने आठवें अङ्ग अन्तकृत् दशा का यह अर्थ कहा है तो भन्ते! नवमें अङ्ग अनुत्तरोपपातिक दशा का भगवान् ने क्या अर्थ कहा है?

३

अनन्तर सुधर्मा अनगार जम्बू अनगार से इस प्रकार कहने लगे —

"जम्बू! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने नवमें अङ्ग अनुत्तरोपपातिक दशा के तीन वर्ग कहे हैं तो भन्ते! अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग के श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने कितने अध्ययन कहे हैं?

४

"जम्बू! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा में प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार है।—

१ जालि कुमार २ मयालि कुमार ३ उपजालिकुमार, ४ पुरुषसेन कुमार ५. वारिषेण कुमार, ६ दीर्घदन्त कुमार ७ लष्टदन्त कुमार, (लट्ठ, राष्ट्रदन्त) ८. वेहल्ल कुमार ९. वेहायस कुमार १ अभय कुमार।"

५

'भन्ते! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, तो भन्ते! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?'

: ६ :

"एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, रिद्धत्थिमियसमिद्धे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। जालीकुमारो। जहा मेहो। अट्ठट्ठओ दाओ [जाव] उप्पि पासाए [जाव] विहरइ।

सामी समोसढे। सेणिओ निग्गओ। जहा मेहो तहा जाली वि निग्गओ। तहेव निक्खंतो जहा मेहो। एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ।

गुण-रयणं तवोकम्मं जहा खंदयस्स। एवं जा चेव खंदगस्स वत्तव्वया, सा चेव चितणा, आपुच्छणा। थेरेहिं सद्धिं विउल तहेव दुरूहइ। नवर सोलस वासाइं सामण्ण-परियागं पाउणित्ता काल-मासे काल किच्चा उड्ढ चन्दिमसोहम्मीसाण [जाव] आरणच्चुए कप्पे नवयगेवेज्जविमाणपत्थडे उड्ढ दूर वीईवइत्ता विजय-विमाणे देवत्ताए उववण्णे।

तएण थेरा भगवंतं जालिं अणगार कालगयं जाणित्ता परिणिव्वाणवत्तिय काउस्सग्गं करेंति। करित्ता पत्तचीवराइं गेण्हंति। तहेव उत्तरति[1] [जाव] इमे से आयारभंडए।

"भंते" त्ति भगवं गोयमे [जाव] एवं वयासी :—

: ७ :

"एवं खलु देवाणुप्पियाण अन्ते-वासी जाली नाम अणगारे पगइभद्दए। से ण जाली अणगारे कालगए कहिं गए, कहिं उववण्णे ?।"

"एवं खलु गोयमा! ममं अंते-वासी तहेव जहा खंदयस्स [जाव] कालगए उड्ढ चंदिम [जाव] विजए विमाणे देवत्ताए उववण्णे।"

"जालिस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं काल ठिई पण्णत्ता ?।"

"गोयमा ! बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।"

"से णं भंते ! ताओ देव-लोयाओ आउक्खएण, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं कहिं गच्छिहिइ, कहिं सिज्झिहिइ।"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।"

---

१ ओयरति—पु० स० प्र०।

६

"जम्बू ! इस प्रकार उस काल और उस समय में राजगृह नामका एक नगर था। वह ऋद्ध स्तिमित (स्थिर) और समृद्ध था। वहां गुणशिलक चैत्य था। वहां का राजा श्रेणिक था और उसकी धारिणी नामकी रानी थी। धारिणी रानी ने स्वप्न में एक सिंह को देखा। कुछ काल के पश्चात् रानी ने मेघकुमार के समान जाली कुमार को जन्म दिया। जाली कुमार के मेघकुमार के समान आठ विवाह हुए और आठ दहेज मिले। यावत् उत्तुङ्ग प्रासाद में निवास करता हुआ जाली कुमार भोग-विलास में रत रहने लगा।

भगवान् महावीर राजगृह नगरी में पधारे। राजा श्रेणिक यह जानकर भगवान् के दर्शन करने के लिए गया। जाली कुमार ने भी मेघकुमार की तरह भगवान् के दर्शन करने के लिए प्रस्थान किया। दर्शन करने के पश्चात् मेघकुमार की तरह जाली कुमार ने भी माता-पिता की अनुमति लेकर प्रव्रज्या स्वीकार करली और उसने स्थविरों की सेवा में रह कर ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया।

उसने स्कन्दक की तरह गुणरत्न नामक तप किया। इस प्रकार जिस्तना तथा मातृपृच्छा के सम्बन्ध में जो वक्तव्यता (वर्णन) भगवतीसूत्र मे है, वही वक्तव्यता जाली कुमार के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। वह स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर गया। विशेष यह है, कि सोलह वर्षों तक जाली कुमार ने श्रमण-पर्याय का पालन किया। आयुष्य के अन्त में मरण करके वह ऊर्ध्वगमन करते हुए चन्द्र से लेकर सौधर्मेशान यावत् आरणाच्युत आदि कल्पों को और नव ग्रैवेयक विमानों को लांघ कर विजय विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

अनन्तर स्थविरों ने जाली अनगार को दिवंगत जान कर उसका परिनिर्वाण-निमित्तक कायोत्सर्ग किया। इसके पश्चात् उन्होंने (स्थविरों ने) जाली अनगार के पात्र एवं चीवरों को ग्रहण किया और फिर विपुलगिरि से नीचे उतर आये। भगवान् की सेवा में आकर स्थविरों ने भगवान् से कहा —

'भन्ते ! जाली अनगार के ये आचार भाण्ड है अर्थात् धर्मोपकरण हैं।

तब भगवान् से गौतम ने कहा —

७

'भन्ते ! आपका अन्तेवासी जाली अनगार, जो प्रकृति का भद्र था वह अपना आयुष्य पूर्ण करके कहां गया है ? और कहां उत्पन्न हुआ है ?"

'गौतम ! मेरा अन्ते-वासी जाली अनगार स्कन्दक के समान ही यावत् समाधि-लाभ करके चन्द्र से भी ऊँचे यावत् विजय विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ है।

"भन्ते ! जालीदेव की काल-स्थिति (आयुमर्यादा) कितनी है ?"

गौतम ! उसकी कालस्थिति बत्तीस सागरोपम की है।

'भन्ते ! देव-लोक से आयु-क्षय होने पर, भव-क्षय होने पर और स्थिति-क्षय होने पर वह जाली देव कहां जायगा ? कहां सिद्ध होगा ?"

गौतम ! वहां से वह महाविदेह-वास से सिद्ध होगा।

: ८ :

"एवं खलु जंबू ! समणेण [जाव] सपत्तेण अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।"

: ९ :

एवं सेसाण वि अट्ठण्हं भाणियव्वं। नवरं छ[1] धारिणिसुआ। वेहल्लवेहायसा चेल्लणाए। अभओ नन्दाए।

आइल्लाणं पंचण्हं सोलस वासाइं सामण्णपरियाओ। तिण्ह बारस-बारस वासाइं। दोण्हं पच वासाइं।

आइल्लाणं पंचण्हं आणुपुव्वीए उववायो विजए वेजयंते जयंते अपराजिए सव्वट्ठसिद्धे।

दीहदंते सव्वट्ठसिद्धे। उक्कमेणं सेसा। अभओ विजए। सेसं जहा पढमे।

अभयस्स नाणत्तं, रायगिहे नयरे, सेणिए राया, नंदा देवी माया। सेसं तहेव।

: १० :

"एवं[2] खलु जंबू ! समणेण [जाव] सपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।"

पढमो वग्गो समत्तो

---

१ जालिकुमार मुक्त्वा अन्ये षड् भवन्ति। इत्यत इद छ इति पाठान्तर समीचीनम्। कासुचित् प्रतिषु सत्त इति पाठ उपलभ्यते, तत्र जालिसहिता सप्तकुमारा बोधव्या।

२ एव जम्बू–पु० स० म०।

८

'जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

९ :

शेष आठ अध्ययनों का वर्णन भी इसी प्रकार का है। विशेषता इतनी है कि धारिणी रानी के छह पुत्र हैं। वेहल्ल और वेहायस चेलना के पुत्र हैं। अभय नन्दा का पुत्र है।

आदि के पांच कुमारों का श्रमण-पर्याय सोलह वर्ष का है तीन का श्रमण-पर्याय बारह वर्ष का है तथा दो का श्रमण-पर्याय पांच वर्ष का है।

आदि के पांच अनगारों का उपपात क्रम अनुक्रम से विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध में हुआ है।

दीर्घदन्त सर्वार्थ सिद्ध मे उत्पन्न हुआ। शेष उत्क्रम से अपराजित आदि में उत्पन्न हुए तथा अभय विजय में उत्पन्न हुआ। शेष वर्णन प्रथम अध्ययन के समान समझ लेना चाहिए।

अभय की विशेषता यह है कि राजगृह नगर है, पिता राजा श्रेणिक है और माता नन्दा देवी है। शेष वर्णन उक्त प्रकार से ही है।

१

'जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है।

प्रथम वर्ग समाप्त

दोच्चो वग्गो

: १ :

"जइ णं भंते ! समणेणं [जाव] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं [जाव] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? ।"

: २ :

"एवं खलु जंबू ! समणेणं [जाव] संपत्तेण अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा :-

दीहसेणे महासेणे लट्ठदंते य गूढदंते य सुद्धदंते य
हल्ले दुमे दुमसेणे महादुमसेणे य आहिए ॥
सीहे य सीहसेणे य महासीहसेणे य आहिए
पुण्णसेणे य बोधव्वे तेरसमे होइ अज्झयणे ॥"

: ३ :

"जइ ण भंते ! समणेणं [जाव] संपत्तेण अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स समणेणं [जाव] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? ।"

: ४ :

"एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं । रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । धारिणी देवी । सीहो सुमिणे । जहा जाली तहा जम्म, बालत्तणं, कलाओ । नवर दीहसेणे कुमारे ।

सच्चेव[1] वत्तव्वया जहा जालिस्स [जाव] अंत काहिइ ॥"

---

१ सव्वेव M C Modi

द्वितीय वर्ग

१

भन्ते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है, तो भन्ते ! अनुत्तरोपपातिक दशा के द्वितीय वर्ग का श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?

२

"जम्बू ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन कहे है, जो इस प्रकार हैं —

१ दीर्घसेन २ महासेन ३ लष्टदन्त (लट्ठदन्त) ४ गूढदन्त ५ शुद्धदन्त ६. हल्ल ७ द्रुम ८ द्रुमसेन ९ महाद्रुमसेन १० सिंह ११ सिंहसेन १२ महा सिंहसेन १३ पुण्यसेन (पुष्यसेन अथवा पूर्णसेन)।

३

'भन्ते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाण-संप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन कहे हैं तो भन्ते ! द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?"

४

'जम्बू ! इस प्रकार उस काल और उस समय में राजगृह नामका नगर था। गुणशिलक चैत्य था। वहाँ का राजा श्रेणिक था और धारिणी देवी रानी थी। सिंह का स्वप्न देखा। जालिकुमार के सदृश जन्म बाल्यकाल और कला-ग्रहण। विशेष यह है कि कुमार का नाम दीर्घसेन है।

शेष समस्त वक्तव्यता जालिकुमार के समान है। यावत् सब दुखों का अन्त करेगा।

: ५ :

एवं तेरस वि रायगिहे । सेणिओ पिता । धारिणी माया । तेरसण्ह वि सोलस वासा परियाओ । आणुपुव्वीए विजए दोण्णि, वेजयंते दोण्णि, जयंते दोण्णि, अपराजिए दोण्णि, सेसा महादुमसेण-माई पंच सव्वट्ठसिद्धे ।

: ६ :

"एवं खलु जंबू ! समणेणं [जाव] अणुत्तरोववाइयदसाण दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।"

मासियाए संलेहणाए दोसु वि वग्गेसु त्ति ।

दोच्चो वग्गो समत्तो

५

इस प्रकार तेरह ही राजकुमारों का नगर राजगृह था। पिता श्रेणिक था और माता धारिणी थी। तेरह ही कुमारों की दीक्षा पर्याय सोलह वर्ष। अनुक्रम से वे दो[1] विजय में दो[2] वैजयन्त में दो जयन्त में दो अपराजित में शेष महाद्रुमसेन आदि पाँच सर्वार्थ सिद्ध में गये।

६

'जम्बू! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कहा है।

दोनों वर्गों मे एक-एक मास की संलेखना है।

द्वितीय वर्ग समाप्त

---

१ दीर्घसेन और महासेन।
२ लष्टदन्त और गूढदन्त।
३ शुद्धदन्त और हल्ल।
४ द्रुम और द्रुमसेन।

तच्चो वग्गो

: १ :

"जइ णं भंते! समणेणं [जाव] संपत्तेण अणुत्तरोववाइयदसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स णं भंते! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं [जाव] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?।"

"एवं खलु जंबू! समणेणं [जाव] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा—

धण्णे य सुणक्खत्ते य इसिदासे य आहिए।
पेल्लए रामपुत्ते य चंदिमा पिट्ठिमाइ य॥
पेढालपुत्ते अणगारे नवमे पोट्टिल्ले वि य।
वेहल्ले दसमे वुत्ते इमे[1] य दस आहिया[2]॥

: २ :

"जइ णं भंते! समणेणं [जाव] संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं [जाव] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?।"

: ३ :

"एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं कायंदी[3] नामं नयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा। सहसंबवणे उज्जाणे सव्वोउउ [जाव], जियसत्तू राया।

तत्थ णं कायंदीए नयरीए भद्दा नामं सत्थवाही परिवसइ, अड्ढा [जाव] अपरिभूया।

तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते धण्णे नामं दारए होत्था, अहीण [जाव] सुरूवे पंचधाईपरिग्गहिए। तं जहा-खीरधाईए।

---

१ इमेते दस – पु० स० प्र०।
२ आहिते – पु० स० प्र०।
३ काग्दी – पु० स० प्र०।

तृतीय वर्ग

१

'भन्ते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कहा है तो भन्ते ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के तृतीय वर्ग का क्या अर्थ कहा है ?

'जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के तृतीय वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं —

१ धन्यकुमार, २ सुनक्षत्र ३ ऋषिदास ४ पेल्लक ५ रामपुत्र ६ चन्द्रिक ७ पृष्टिमातृक ८ पेढालपुत्र ९ पोट्टिल्ल १० वेहल्ल।

२

"भन्ते ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के तृतीय वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, तो भन्ते ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?'

३

'जम्बू ! इस प्रकार उस काल और उस समय में काकन्दी नामकी एक नगरी थी। वह नगरी ऋद्ध स्तिमित (स्थिर) और समृद्ध थी। सहस्राम्र वन नाम का एक उद्यान था जिसमें समस्त ऋतुओं के फल और फूल सदा रहते थे। उस समय वहाँ जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था।

उस काकन्दी नगरी में भद्रा नामकी एक सार्थवाही रहती थी। वह आढ्या यावत् अपरिभूता थी।

उस भद्रा सार्थवाही के धन्यकुमार नामका एक पुत्र था जो अहीन यावत् सुरूप तथा पञ्चधात्री परिगृहीत था। जैसे—क्षीरधात्री आदि।

जहा महब्बलो [जाव] बावत्तरि कलाओ अहीए [जाव] अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णं दारयं उम्मुक्कबालभावं [जाव] भोगसमत्थं यावि जाणित्ता बत्तीसं पासायवडिंसए कारेइ अब्भुग्गय-मूसिए [जाव] तेसिं मज्झे भवणं अणेगखंभसयसंणिविट्ठं [जाव] बत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेइ। बत्तीसओ दाओ [जाव] उप्पिं पासाय [जाव] फुट्टतेहिं [जाव] विहरइ।

: ४ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे [जाव] समोसढे। परिसा निग्गया। राया जहा कोणिओ तहा जियसत्तू निग्गओ। तए णं तस्स धण्णस्स तं महया जहा जमाली तहा निग्गओ। नवरं पाय-चारेणं।

[जाव] नवरं "अम्मयं भद्दं सत्थवाहिं आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए [जाव] पव्वयामि।"

[जाव] जहा जमाली तहा आपुच्छइ। मुच्छिया। वुत्तपडिवुत्तया जहा महब्बले [जाव] जाहे नो संचाएइ।

जहा थावच्चापुत्तो जियसत्तुं आपुच्छइ। छत्तचामराओ०। सयमेव जियसत्तू निक्खमणं करेइ जहा थावच्चापुत्तस्स कण्हो [जाव], पव्वइए अणगारे जाए, ईरिया-समिए [जाव] गुत्तबंभचारी।

: ५ :

तए णं से धण्णे अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता [जाव] पव्वइए, तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी :—

: ६ :

"एवं खलु इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे जाव-ज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिलपरिग्गहिएणं तवोकम्मेण अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तए।"

जिस प्रकार महाबल ने बहत्तर कलाओं का अध्ययन किया यावत् वह भोगों का उपभोग करने में समर्थ हुआ उसी प्रकार धन्यकुमार ने भी पाँच धायों से परिरक्षित होकर बहत्तर कलाओं का अध्ययन किया यावत् भोगो का उपभोग करने में समर्थ हुआ।

अनन्तर उस भद्रा सार्थवाही ने धन्यकुमार को बाल भाव से उन्मुक्त जानकर यावत् भोगसमर्थ जान कर बत्तीस सुन्दर प्रासाद बनवाए जो विशाल और उत्तुङ्ग थे यावत् उनके मध्य में अनेक स्तंभों पर आधारित एक भवन बनवाया। इसके पश्चात् उसने यावत् एक दिन में बत्तीस इभ्यवरों (श्रेष्ठि प्रवरों) की कन्याओं के साथ धन्यकुमार का पाणिग्रहण—विवाह सम्पन्न कराया। बत्तीस दहेज आए। यावत् ऊँचे प्रासादों में—जिनमें मृदंग बज रहे थे यावत् धन्यकुमार सुख-भोगो म लीन हो गया।

४

उस काल और उस समय मे श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर काकन्दी नगरी में पधारे। परिषदा निकली। कोणिक की तरह जितशत्रु राजा भी दर्शनार्थ निकला। जमाली के समान धन्यकुमार भी साज-सज्जा के साथ निकला। विशेष यह है कि धन्यकुमार पैदल चल कर ही भगवान् की सेवा में पहुँचा।

यावत् विशेष यह है कि धन्यकुमार ने भगवान् से कहा कि 'मैं माता भद्रा सार्थवाही से पूछ कर देवानुप्रिय क पास यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करू गा।

यावत् धन्यकमार ने अपनी माता भद्रा से उसी प्रकार पूछा जिस प्रकार जमाली ने अपने माता-पिता से पूछा था। धन्यकुमार का वचन सुन कर माता भद्रा मूर्च्छित होगई और मूर्च्छा दूर होने पर धन्यकुमार क साथ माता भद्रा की उक्ति प्रत्युक्ति अर्थात् संवाद हुआ। जब भद्रा महाबल के सदृश धन्यकुमार को रोक रखने में समर्थ न हो सकी तब उसने धन्यकुमार को प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दे दी।

जिस प्रकार थावच्चा पुत्र की माता ने कृष्ण से दीक्षा की आज्ञा मांगी और छत्र-चामरादि की याचना की उसी प्रकार भद्रा ने भी जित शत्रु राजा से आज्ञा मांगी और छत्र-चामर आदि की याचना की तथा जिस प्रकार कृष्ण ने थावच्चा-पुत्र का दीक्षा-महोत्सव सम्पन्न कराया उसी प्रकार जितशत्रु राजा ने भी धन्यकुमार का दीक्षा-महोत्सव सम्पन्न कराया। यावत् धन्यकुमार प्रव्रजित होकर अनगार होगया। ईर्या-समित यावत् गुप्त-ब्रह्मचारी हो गया।

५

अनन्तर धन्य अणगार जिस दिन प्रव्रजित हुआ उसी दिन श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया नमस्कार किया तथा वन्दन और नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगा —

६

"भन्ते! आप से अनुज्ञात होकर जीवन-पर्यन्त निरन्तर षष्ठ (बेला) तप से तथा आयंबिल क पारणे से मैं अपनी आत्मा को भावित (पवित्र) करते हुए विचरण करना चाहता हूँ।

"छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि कप्पइ मे आयंबिलं पडिगाहेत्तए, नो चेव णं अणायंबिलं। तं पि य संसट्ठं नो चेव णं असंसट्ठं। तं पि य णं उज्झियधम्मियं। नो चेव अणुज्झियधम्मियं। तं पि य जं अण्णे बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा नावकंखंति।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।"

: ७ :

तए णं से धण्णे अणगारे समणेण भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठ जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से धण्णे अणगारे पढमछट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ। जहा गोयमसामी तहेव आपुच्छइ [जाव] जेणेव कायंदी नयरी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता कायंदीए नयरीए उच्च० [जाव] अडमाणे आयंबिलं, नो अणायंबिलं [जाव] नावकंखंति।

तए णं से धण्णे अणगारे ताए अब्भुज्जयाए पययाए पयत्ताए पग्गहियाए एसणाए एसमाणे जइ भत्तं लभइ, तो पाणं न लभइ, अह पाणं[1] लभति तो भत्तं न लभइ।

तए णं से धण्णे अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अविसादी अपरितंतजोगी जयणघडणजोगचरित्ते अहापज्जत्तं समुदाणं पडिगाहेइ। पडिगाहित्ता कायंदीओ नयरीओ पडिणिक्खमइ। पडिणिक्खमित्ता जहा गोयमे [जाव] पडिदंसेइ।

तए णं से धण्णे अणगारे समणेणं भगवया अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए [जाव] अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं आहारं आहारेइ। आहारित्ता संजमेणं तवसा [जाव] विहरइ।

१ पाणं तो – M. C. Modi

"षष्ठ तप के पारणा में भी मुझे आयंबिल ग्रहण करना कल्पता है परन्तु अनायंबिल ग्रहण करना नहीं कल्पता। वह भी संसृष्ट हाथों से लेना कल्पता है असंसृष्ट हाथों से लेना नहीं कल्पता। वह भी उज्झित धर्मवाला कल्पता है अनुज्झित धर्मवाला नहीं कल्पता। उसमें भी वह भक्त-पान कल्पता है जिसके लेने की अन्य बहुत से श्रमण माहण (ब्राह्मण) अतिथि कृपण और वनीपक (भिखारी) इच्छा नहीं करते।

धन्य अनगार से भगवान् ने इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय! जैसा सुखकर हो वैसा करो परन्तु प्रमाद मत करो।

७

अनन्तर वह धन्य अनगार भगवान् महावीर से अनुज्ञात होकर यावत् हर्षित एवं तुष्ट होकर जीवन-पर्यन्त निरन्तर षष्ठ तप से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा।

अनन्तर उसने प्रथम षष्ठ तप के पारणा के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया। जिस प्रकार गौतम ने भगवान् से पूछा उसी प्रकार पारणा के लिए धन्य अनगार ने भी भगवान् से पूछा। यावत् जिस ओर काकन्दी नगरी थी उस ओर चला और चल कर काकन्दी नगरी के उच्च नीच और मध्यम कुलों में यावत् घूमता हुआ आयंबिल-स्वरूप रूक्ष आहार ही धन्य अनगार ने ग्रहण किया। यावत् सरस आहार ग्रहण करने की आकांक्षा नहीं की।

अनन्तर उस धन्य अनगार ने सुविहित उत्कृष्ट यतनासहित दाता द्वारा प्रदत्त अथवा गुरुजनों द्वारा अनुज्ञात पूर्णतया स्वीकृत एषणा से गवेषणा करते हुए यदि भक्त प्राप्त किया तो पान प्राप्त नहीं किया और यदि पान प्राप्त किया तो भक्त प्राप्त नहीं किया।

अनन्तर वह धन्य अनगार अदीन अविमन अर्थात् प्रसन्नचित्त अकलुष अर्थात् कषायरहित अविषादी अर्थात् विषादरहित अपरिश्रान्त योगी अर्थात् निरन्तर समाधियुक्त था तथा उसमें प्राप्त योगों (संयम-व्यापारों) की यतना (उद्यम) जिसमें है, अप्राप्त योगों की घटना प्राप्त्यर्थ यत्न जिसमें है इस प्रकार के चारित्र का पालन किया। वह यथाप्राप्त समुदान अर्थात् भिक्षान्न को ग्रहण कर काकन्दी नगरी से बाहर निकला भगवान् के निकट आया। जिस प्रकार गौतम ने भगवान् को आहार दिखलाया था उसी प्रकार धन्य अनगार ने भी दिखलाया।

अनन्तर धन्य अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर से अनुज्ञात होकर अमूर्छित यावत् राग-द्वेष से रहित होकर अर्थात् अनासक्त भाव से इस प्रकार आहार किया जिस प्रकार सर्प बिल में प्रवेश करते समय बिल के दोनों पार्श्व भागों को स्पर्श न करके मध्यभाग से ही उसमें प्रवेश करता है। अर्थात् धन्य अनगार भी मुख के दोनों पार्श्व भागों से स्पर्श किये बिना ही स्वाद की आसक्ति से रहित होकर आहार करता था। आहार करके उसने संयम और तप से यावत् विचरण किया।

: ८ :

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ कायंदीओ नयरीओ[1] सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ । पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ ।

तए ण से धण्णे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाण थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ । अहिज्जित्ता संजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ ।

तए ण से धण्णे अणगारे तेण उरालेण [जहा] खंदओ जाव सुहुय उवसोभेमाणे चिट्ठइ ।

: ९ :

धण्णस्स णं अणगारस्स पायाणं अयमेयारूवे तवरूवलावण्णे होत्था, से जहा नामए सुक्कछल्ली इ वा, कट्ठपाउया इ वा, जरग्ग-ओवाहणा इ वा, एवामेव धण्णस्स अणगारस्स पाया सुक्का निम्मसा अट्ठिचम्मछिरत्ताए पण्णायंति, नो चेव ण मंससोणियत्ताए ।

: १० :

धण्णस्स ण अणगारस्स पायंगुलियाण अयमेयारूवे [जाव] से जहा नामए कलसंगलिया इ वा, मुग्गसामसंगलिया इ वा, तरुणिया छिण्णा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी मिलायमाणी मिलायमाणी चिट्ठति, एवामेव धण्णस्स पायंगुलियाओ सुक्काओ [जाव] सोणियत्ताए ।

: ११ :

धण्णस्स जंघाणं अयमेयारूवे [जाव] से जहा [जाव] काकजंघा इ वा, कंकजंघा इ वा, ढेणियालियाजंघा इ वा [जाव] सोणियत्ताए ।

: १२ :

धण्णस्स जाणूण अयमेयारूवे [जाव] से जहा [जाव] कालिपोरे इ वा, मयूरपोर इ वा, ढेणियालियापोरे इ वा एवं [जाव] सोणियत्ताए।

---

१ कायदीए – पु० स० प्र० ।

८

अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर अन्यदा कदाचित् काकन्दी नगरी के सहस्राम्र-वन उद्यान से निकले और बाहर जनपदों में विहार करने लगे।

अनन्तर उस धन्य अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया और इसके पश्चात् वह संयम और तप से अपने आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा।

अनन्तर वह धन्य अनगार उस उदार तप से स्कन्दक की तरह यावत् सुहुत अग्नि के समान सुशोभित होकर रहने लगा।

तपोवर्णन

९

पाद-वर्णन

धन्य अनगार के पैरों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे वृक्ष की सूखी छाल हो काठ की खड़ाऊ हो तथा पुराना जूता हो। इस प्रकार धन्य अनगार के पैर सूखे थे—रूखे थे और निर्मांस थे। अस्थि (हड्डी) चर्म और शिराओं से ही वे पहिचाने जाते थे। मांस और शोणित (रक्त) के क्षीण हो जाने से उनसे पैरों की पहिचान नहीं होती थी।

१०

पादाङ्गुली-वर्णन

धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—कलाय (मटर) की फलियां हों मूंग की फलियां हों उड़द की फलियां हों—इन कोमल फलियों को काट कर धूप में डाल देने पर जैसे वे सूखी और मुर्झायी हो जाती हैं, वैसे ही धन्य अनगार के पैरों की अंगुलियां भी सूख गई थी और मुरझा गई थी। उनमें अस्थि चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थी मांस और शोणित उनमें (प्रायः) नहीं रह गया था।

११

जंघा-वर्णन

धन्य अनगार की जंघाओं (पिंडलियों) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—काक पक्षी की जंघा हो कंक पक्षी की जंघा हो ढेणिक पक्षी (टिड्ड) की जंघा हो। उनमें अस्थि चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थी मांस और शोणित उनमें नहीं रह गया था।

१२

जानु-वर्णन

धन्य अनगार के जानुओं (घुटनों) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—काली वनस्पति का पर्व (सन्धि या जोड़) हो मयूर पक्षी का पर्व हो, ढेणिक पक्षी का पर्व हो। उनमें अस्थि चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं मांस और शोणित उनमें नहीं रह गया था।

: १३ :

धण्णस्स उरुस्स[1] [जाव] जहा नामए सोमिकरील इ वा, मल्लइ-करीलें इ वा, सामलिकरीलें इ वा, तरुणिए उण्ह [जाव] चिट्ठइ, एवामेव[2] धण्णस्स उरु [जाव] सोणियत्ताए।

: १४ :

धण्णस्स कडिपत्तस्स इमेयारूवे [जाव] से जहा [जाव] उट्टपादे[3] इ वा, जरग्गपाए[4] इ वा, महिसपाए इ वा, [जाव] सोणियत्ताए।

: १५ :

धण्णस्स उयरभायणस्स इमेयारूवे [जाव] से जहा [जाव] सुक्कदिए इ वा, भज्जणयकभल्ले इ वा, कट्ठकोलंबए इ वा, एवामेव उदर सुक्कं [जाव]।

: १६ :

धण्णस्स पासुलियाकडयाणं इमेयारूवे [जाव] से जहा [जाव] थासयावली इ वा, पाणावली इ वा, मुंडावली इ वा [जाव]।

: १७ :

धण्णस्स पिट्ठिकरडयाणं अयमेयारूवे [जाव] से जहा [जाव] कण्णावली इ वा गोलावली इ वा, वट्टयावली इ वा, एवामेव [जाव]।

---

१ उरू से जहा—पु० स० प्र०।

२ एवमेव—पु० स० प्र०।

३ उट्टपदे ति वा—पु० स० प्र०।

४ जरग्गपदे ति वा—पु० स० प्र०।

१३

उरु-वर्णन

धन्य अनगार की उरुओं (सांथलों) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था—जैसे-बदरी प्रियंगु तथा शाल्मली वृक्षों की कोमल कोंपलें काट कर धूप में डालने से सूख गई हों मुरझा गई हों। इसी प्रकार धन्य अनगार की ऊरु भी सूख गई थी मुरझा गई थी। उसमें मांस और शोणित नहीं रह गया था।

१४

कटि-वर्णन :

धन्य अनगार की कटि पत्र (कमर) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—ऊँट का पैर हो बूढ़े बैल का पैर हो और बूढ़े महिष (भैंसे) का पैर हो। उसमें अस्थि चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थीं मांस और शोणित उसमें नहीं रह गया था।

१५

उदर-वर्णन

धन्य अनगार के उदर भाजन (पेट) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—सूखी मशक हो चनकादि भूनने का खप्पर हो, आटा गूंथने की कठौती हो। इसी प्रकार धन्य अनगार का पेट भी सूख गया था। उसमें मांस और शोणित नहीं रह गया था

१६

पांशुलिका-वर्णन

धन्य अनगार की पसलियों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—स्थासकों की आवली अर्थात् जैसे दलान पर एक दूसरे के ऊपर रक्खी हुई दर्पणों की पंक्ति हो पाणावली अर्थात् एक दूसरे पर रखे हुए पान-पात्रों (गिलासों) की पंक्ति हो मुण्डावली अर्थात् स्थाणु = विशेष प्रकार के खूंटों की पंक्ति हो। जिस प्रकार उक्त वस्तुएँ गिनी जा सकती हैं उसी प्रकार धन्य अनगार की पसलियां भी गिनी जा सकती थीं। उसमें अस्थि चर्म और शिराएँ ही शेष रह गई थी। मांस और शोणित उसमें नहीं रह गया था।

१७

पृष्ठ करण्ड-वर्णन :

धन्य अनगार के पृष्ठकरण्ड (रीढ़) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—मुकुटों के काठे अर्थात् मुकुटों की किनारियों के कोरों के नाम हों परस्पर चिपकाये हुए लगाये हुए गोल-गोल पत्थरों की पंक्ति हो तथा लाख के बने हुए विशेष प्रकार के नाम गोल खिलौने हों। इसी प्रकार धन्य अनगार की रीढ़ सूख कर मांस और शोणित से रहित हो गई थी—अस्थि चर्म और शिराएँ ही उसमें शेष रह गई थी।

: १८ :

धण्णस्स उरकडयस्स अयमेयारूवे [जाव] से जहा [जाव] चित्त-कट्टरे इ वा, वियणपत्ते इ वा, तालियंटपत्ते[1] इ वा, एवामेव [जाव]।

: १९ :

धण्णस्स बाहाण [जाव] से जहा नामए [जाव] समिसंगलिया इ वा[2], वाहायासंगलिया इ वा, अगत्थियसंगलिया इ वा, एवामेव [जाव]।

: २० :

धण्णस्स हत्थाण [जाव] से जहा [जाव] सुक्कछगणिया इ वा, वडपत्ते इ वा, पलासपत्ते इ वा, एवामेव [जाव]।

: २१ :

धण्णस्स हत्थंगुलियाणं [जाव] से जहा [जाव] कलसंगलिया इ वा, मुग्गसंगलिया इ वा, माससंगलिया इ वा, तरुणिया छिण्णा आयवे दिण्णा सुक्का समाणी एवामेव [जाव]।

: २२ :

धण्णस्स गीवाए [जाव] से जहा [जाव] करगगीवा इ वा, कुंडियागीवा इ वा, उच्चट्ठवणए इ वा, एवामेव [जाव]।

---

१ तालियतप त्ते M C Modi
२ वा पहायास – M C Modi
३ एवमेव – आ० स० मु०।
४ कलायस – आ० स० मु०।

१८

उर-कटक-वर्णन

धन्य अनगार के उर-कटक (वक्ष स्थल) अर्थात् छाती का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—बांस से बनी टोकरी के नीचे का हिस्सा हो, बांस की बनी खपचियों का पंखा हो तथा ताड़पत्र का बना पंखा हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की छाती एकदम खाली होकर, सूख कर मांस और शोणित से रहित होकर अस्थि चर्म और शिरा मात्र शेष रह गई थी।

१९

बाहु-वर्णन

धन्य अनगार का बाहु अर्थात् कंधे से नीचे के भाग रूप भुजाओं का तपोजन्य रूप लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—शमी (खेजड़ी) वृक्ष की सूखी हुई लम्बी-लम्बी फलियां हों, बाहाया (अमलतास) वृक्ष की सूखी हुई लम्बी-लम्बी फलियां हों, अगस्तिक (अगथिया) वृक्ष की सूखी हुई फलियां हों। इसी प्रकार धन्य अनगार की भुजाएं भी मांस और शोणित से रहित होकर सूख गई थी। उसमें अस्थि चर्म और शिराएं ही शेष रह गई थी। मांस और शोणित उसमें नहीं रह गया था।

२०

हस्त-वर्णन

धन्य अनगार के कुहनी के नीचे के भागरूप हाथों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—सूखा छाण (कंडा) हो, सूखा बड़ का पत्ता हो, सूखा पलाश का पत्ता हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के हाथ भी सूख गये थे, मांस और शोणित से रहित हो गए थे। उसमें अस्थि चर्म और शिराएं ही शेष रह गई थी। मांस और शोणित उसमें नहीं था।

२१

हस्तांगुली-वर्णन

धन्य अनगार के हाथों की अंगुलियों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे कलाय अर्थात् मटर की सूखी फलियां हों, मूंग की सूखी फलियां हों, उड़द की सूखी फलियां हों। उन कोमल फलियों को काट कर धूप में सुखाने पर जिस प्रकार वे सूख जाती हैं, कुम्हला जाती हैं उसी प्रकार धन्य अनगार के हाथों की अंगुलियां भी सूख गई थी उसमें मांस और शोणित नहीं रह गया था। अस्थि चर्म और शिराएं ही शेष रह गई थी।

२२

ग्रीवा-वर्णन

धन्य अनगार की ग्रीवा अर्थात् गर्दन का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे पानी के घड़े का कांठा (गर्दन) हो, छोटी कुण्डी (पानी की झारी) की गर्दन हो, उच्च [illegible] सुराही ? की गर्दन हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की गर्दन मांस और शोणित से रहित होकर सूखी-सी और लम्बी-सी हो गई थी।

: २३ :

धण्णस्स ण हणुयाए [जाव] से जहा [जाव] लाउयफले इ वा, हकुवफले इ वा, अंबगट्ठिया इ वा, एवामेव [जाव]।

: २४ :

धण्णस्स उट्ठाण (जाव) से जहा (जाव) सुक्कजलोया इ वा, सिलेसगुलिया इ वा, अलत्तगुलिया इ वा, एवामेव (जाव)।

: २५ :

धण्णस्स जिब्भाए (जाव) से जहा (जाव) वडपत्ते इ वा, पलासपत्ते इ वा, सागपत्ते इ वा, एवामेव (जाव)।

: २६ :

धण्णस्स नासाए (जाव) से जहा (जाव) अंबगपेसिया इ वा, अबाडगपेसिया इ वा, माउलुंगपेसिया[४] इ वा, तरुणिया एवामेव (जाव)।

: २७ :

धण्णस्स अच्छीण (जाव) से जहा (जाव) वीणाछिड्डे इ वा, वद्धीसगछिड्डे इ वा, पभायतारगा इ वा, एवामेव (जाव)।

---

४ मातुलिंगये – पु० स० अ०।

२३

हनु-वर्णन

धन्य अनगार की हनु अर्थात् ठोड़ी का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—तुम्बे का सूखा फल हो हकुब अर्थात् हिंगोटे का सूखा फल हो आम की सूखी गुठली हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की हनु अर्थात् ठोड़ी भी मांस और शोणित स रहित होकर सूख गई थी।

२४

ओष्ठ-वर्णन

धन्य अनगार के ओष्ठों का अर्थात् होठों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—सूखी जोंक हो सूखी श्लेष्म की गुटिका अर्थात् गोली हो अलत्ते की गुटिका अर्थात् अवरबत्ती के समान लाख के रस की लम्बी बत्ती हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के होठ सूख कर मांस और शोणित से रहित हो गए थे।

२५

जिह्वा-वर्णन

धन्य अनगार की जीभ का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—वड़ का सूखा पत्ता हो पलाश का सूखा पत्ता हो शाक अर्थात् सागवान का सूखा पत्ता हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की जीभ भी सूख गई थी उसमें मांस और शोणित नहीं रह गया था।

६

नासिका-वर्णन

धन्य अनगार की नाक का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—आम की सूखी फांक हो आम्रातक अर्थात् आमड़े की सूखी फांक हो मातुलिंग अर्थात् बिजौरे की सूखी फांक हो—उन कोमल फलों को काट कर, धूप में सुखाने पर, जिस प्रकार व मुरझा जाती हैं उसी प्रकार धन्य अनगार की नाक भी मांस और शोणित से रहित होकर सूख गई थी।

२७।

अक्षि-वर्णन

धन्य अनगार की आंखों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—वीणा का छिद्र हो, बद्धीसक अर्थात् बांसरी का छिद्र हो प्राभातिक तारक अर्थात् प्रभातकाल का प्रभाहीन तारा हो। इसी प्रकार धन्य अनगार की आंखें भी मांस और शोणित से रहित हो कर अन्दर की ओर धंस गई थी तथा वे प्रकाश-हीन—तेजोहीन होगई थी। अर्थात् आंखों में बीबी की भांति टिमटिमाहट ही—चमक ही—दिखलाई देती थी।

: २८ :

धण्णस्स कण्णाणं [जाव] से जहा [जाव] मूलाछल्लिया इ वा, वालुंकछल्लिया इ वा, कारेल्लयछल्लिया[1] इ वा, एवामेव [जाव]।

: २९ :

धण्णस्स सीसस्स [जाव] से जहा [जाव] तरुणगलाउए इ वा, तरुणगएलालुए इ वा, सिण्हालए इ वा, तरुणए [जाव] चिट्ठइ, एवामेव [जाव]। सीसं सुक्कं लुक्खं निम्मंसं अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायइ, नो चेव णं मंस-सोणियत्ताए।

: ३० :

एव सव्वत्थ। नवरं, उयर-भायण[2]-कण्ण-जीहा-उट्ठा एएसिं अट्ठी न भण्णइ, चम्म-छिरत्ताए पण्णायइ त्ति भण्णइ।

: ३१ :

धण्णे णं अणगारे णं सुक्केणं भुक्खेणं लुक्खेणं पायजंघोरुणा, विगयतडिकरालेणं कडिकडाहेणं, पिट्ठमवस्सिएण[3] उदरभायणेणं, जोइज्जमाणेहिं पासुलियकडएहिं, अक्खसुत्तमाला इव गणेज्जमाणेहिं पिट्ठिकरडगसंधीहिं, गंगातरंगभूएण उरकडगदेसभाएणं, सुक्कसप्पसमाणेहि बाहाहिं, सिढिलकडाली विव[4] लबंतेहि य अग्गहत्थेहिं, कंपणवाइए[5] विव वेवमाणीए सीस-घडीए, पव्वायवयणकमले उब्भडघडमुहे[6] उच्छुड्डणयणकोसे जीवंजीवेण गच्छइ, जीवंजीवेणं चिट्ठइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलाइ। से जहा नामए इंगालसगडिया इ वा।

जहा खंदओ तहा [जाव] हुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णे तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

---

१ यवण्णियाइ वा – पु० स० अ०।
२ भायण कण्णा जीहा उट्ठा एएसिं – M C Modi
३ पिट्ठिम० – M C Modi पट्टीम – पु० स० अ०।
४ व चलतेहि य – पु० स० अ०।
५ वाइओ विव – पु० स० अ०।
६ उब्बुडण० – M C Modi

: ८ :

कर्ण-वर्णन

धन्य अनगार के कानों का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—मूले के कन्द की कटी हुई लम्बी-पतली छाल हो ककड़ी की कटी हुई लम्बी-पतली छाल हो करेले की कटी हुई लम्बी-पतली छाल हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के कान भी सूख गए थे। उनमें मांस और शोणित नहीं रह गया था।

: ९ :

शीर्ष-वर्णन

धन्य अनगार के शीर्ष (मस्तक) का तपोजन्य रूप-लावण्य इस प्रकार का हो गया था जैसे—सूखा तुम्बा हो सूखा सूर्य कन्द हो सूखा तरबूज हो—इन कोमल फलों को काट कर धूप में सुखाने पर जैसे ये सूख जाते हैं मुरझा जाते हैं वैसे ही धन्य अनगार का मस्तक भी मांस और शोणित से रहित होकर सूख गया था मुरझा गया था। उसमें अस्थि चर्म और सिराएँ ही शेष रह गई थीं।

: १० :

धन्य अनगार के तपपूत देह के समस्त अङ्गों का यह सामान्य वर्णन है। विशेष यह है कि पेट कान जीभ और होंठ—इनमें अस्थि-वर्णन नहीं है केवल चर्म और सिराओं से ही इनकी पहिचान होती है।

: ११ :

उपसंहार

घोर तपस्वी वह धन्य अनगार दीर्घतप के कारण भूखे और सूखे के कारण रूखे पैर पिंडली और सांथल से मांस और शोणित के अभाव मे पार्श्व भागों की अस्थियाँ जिसमें नदी के तट के समान विकृत एवं कराल हो रही हैं—इस प्रकार के कटि-कटाह से मांस-मज्जा और शोणित के अभाव मे पीठ से लगे पेट से निर्मांस होने के कारण स्पष्ट दिखलाई देने वाली पसलियों से मांस और मज्जारहित होने से रुद्राक्ष माला के मनकों के समान स्पष्ट गिने जाने योग्य पृष्ठ-करण्डक (रीढ) की सन्धियों से गङ्गा की तरङ्गों के तुल्य वक्षस्थल के भाग से सूखे हुए सर्प के तुल्य लम्बी सूखी भुजाओं से घोड़े की ढीली लगाम के तुल्य कांपते हुए अग्र हस्तों से कम्पन वात-ग्रस्त मनुष्य के तुल्य कांपते हुए मस्तक से युक्त वह धन्य अनगार जिसका मुख-कमल म्लान हो गया था होठों के सूख जाने से जिसका मुख टूटे मुखवाले घड़े के समान विकृत हो गया था जिसके नयन-कोष अन्दर की ओर धँस गये थे—दीर्घ तप से इस प्रकार क्षीण होकर वह धन्य अनगार अपने शरीर के बल से नहीं परन्तु अपने अन्तर्बल से ही जीवन को चलाता था अपने अन्तर्बल से ही खड़ा होता था बैठता था "मैं बोलूँगा बोलना पड़ेगा" इतने विचार मात्र से ही म्लान हो जाता था परिश्रान्त हो जाता था। जिस समय वह चलता तो उसके शरीर की हड्डियाँ इस प्रकार से बजती थीं जैसे कोई कोयलों से भरी गाड़ी चली जा रही हो।

जो दशा स्कन्दक की हो गई थी वही दशा धन्य अनगार की भी हो गई थी। राख के ढेर मे दबी आग के समान वह अन्दर ही अन्दर आत्म-तेज से प्रदीप्त हो रहा था। वह धन्य अनगार तप से तेज से और तपस्तेज की शोभा (आभा) से सुशोभित होकर अपनी साधना में स्थिर था अडिग था और अक्षोभ था।

: ३२ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगव महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। सेणिय निग्गए। धम्मकहा, परिमा पडिगया।

तए णं से सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इमासिं णं भंते! इंदभूइ-पामोक्खाण चोद्दसण्ह समणसाहस्सीणं[1] कयरे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरयराए चेव?।"

: ३३ :

"एव खलु सेणिया! इमासिं इंदभूइ-पामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीण धण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरयराए चेव।"

"से केणट्ठेण भंते! एव वुच्चइ इमासिं [जाव] साहस्सीण धण्णे-अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरयराए चेव?"।

: ३४ :

"एव खलु सेणिया! तेणं कालेणं तेण समएणं कायंदी नामं नयरी होत्था [जाव] उप्पि पासायवडिंसए विहरइ।

तए णं अहं अण्णया[2] कयाइ पुव्वाणुपुव्वीए चरमाणे गामाणुगामे दूइज्जमाणे जेणेव कायंदी नयरी जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागए। उवागमित्ता अहापडिरूव उग्गहं उग्गिण्हामि। संजमेणं [जाव] विहरामि। परिसा निग्गया। तहेव [जाव] पव्वइए [जाव] बिलमिव [जाव] आहारेइ। धण्णस्स ण अणगारस्स पादाणं सरीरवण्णओ सव्वो [जाव] उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

से तेणट्ठेणं सेणिया! एवं वुच्चइ इमासिं चउदसण्हं साहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्करकारए महाणिज्जरयराए चेव।"

१ ण धण्णे अण० – M C Modi

२ याऽतीति – पु० म० अ०।

३२

उस काल और उस समय में राजगृह नामका एक नगर था। गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक वहाँ का राजा था।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषदा निकली। राजा श्रेणिक भी निकला। धर्म-कथा हुई। परिषदा वापिस चली गई।

अनन्तर उस श्रेणिक राजा ने श्रमण भगवान् महावीर के सान्निध्य में धर्म को सुन कर, विचार कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया नमस्कार किया। वन्दन करके नमस्कार करके भगवान् से इस प्रकार कहा—

'भन्ते! आपके इन इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में कौन अनगार महादुष्कर कारक है महानिर्जराकारक है?'

३३

भगवान् ने उत्तर दिया — श्रेणिक! इन इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार ही महादुष्करकारक है महानिर्जराकारक है।

श्रेणिक ने पुनः प्रश्न किया—"भन्ते! किस अपेक्षा से आपने यह कहा कि इन इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार ही महादुष्करकारक है महानिर्जराकारक है?

३४

उत्तर में भगवान् ने इस प्रकार कहा — 'श्रेणिक! उस काल और उस समय में काकन्दी नामकी एक नगरी थी। वह ऋद्ध थी स्तिमित (स्थिर) थी और समृद्ध थी। वहाँ ऊँचे महलों में धन्य कुमार भोगों में लीन था

अनन्तर मैं एक बार अनुक्रम से चलता हुआ एक ग्राम से दूसरे ग्राम को विहार करता हुआ जहाँ पर काकन्दी नगरी थी और जहाँ पर सहस्राम्र वन उद्यान था वहाँ पर आया। आकर यथाप्रतिरूप (साधुजनोचित) स्थान की याचना की। संयम यावत् तप में स्थिर होकर रहा। परिषदा निकली यावत् धन्यकुमार प्रव्रजित हुआ। यावत् अनासक्ति से आहार करता था। धन्य अनगार के पैर से लेकर मस्तक तक सारे शरीर का वर्णन पूर्ववत् समझ लेना यावत् वह तप से सुशोभित होकर रहता था।

श्रेणिक! इस अपेक्षा से मैं यह कहता हूँ कि इन इन्द्रभूति-प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार महादुष्कर कारक है महानिर्जराकारक है।

: ३५ :

तए णं से सेणिए राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ [जाव] समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव धण्णे अणगारे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता धण्णं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ। वंदित्ता-नमंसित्ता एवं वयासी—

"धण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया! सुपुण्णे सुकयत्थे कयलक्खणे सुलद्धे णं[1] देवाणुप्पिया! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले"—त्ति कट्टु वंदइ, नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए।

: ३६ :

तए णं तस्स धण्णस्स अणगारस्स। अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता-वरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं० इमेयारूवे अब्भत्थिए—

"एवं खलु अहं इमेणं उरालेणं[जाव]" जहा खंदओ तहेव चिंता। आपुच्छणं। थेरेहिं सद्धिं विउलं दुरूहइ। मासिया संलेहणा। नव मासा परियाओ। [जाव] कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम [जाव] नवयगेवेज्जे विमाण-पत्थडे उड्ढं दूरं वीईवइत्ता सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे।

थेरा तहेव ओयरंति [जाव] इमे से आयारभंडए। भंते त्ति भगवं गोयमे तहेव आपुच्छति, जहा खंदयस्स भगवं वागरेइ, [जाव] सव्वट्ठ-सिद्धे विमाणे उववण्णे।

"धण्णस्स णं भंते! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?"
"गोयमा! तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।"

---

१ णं तं देवाणुप्पिया। तव—पु० स० प्र०।

३५

अनन्तर उस श्रेणिक राजा ने श्रमण भगवान् महावीर से इस अर्थ को सुन कर विचार कर हर्ष तुष्ट होकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की वन्दन किया तथा नमस्कार किया। वन्दन करके नमस्कार करके जहाँ पर धन्य अनगार था वहाँ आया। आकर धन्य अनगार की प्रदक्षिणा की वन्दन किया नमस्कार किया। वन्दन करके नमस्कार करके वह इस प्रकार कहने लगा —

'हे देवानुप्रिय! आप धन्य हो। आप पुण्यशाली हो। आप कृतार्थ हो। आप सुलक्षण हो। हे देवानुप्रिय! आपने मनुष्य-जन्म और मनुष्य-जीवन को सफल किया।' —यह कह कर उसने धन्य अनगार को वन्दन किया नमस्कार किया। वन्दन करके नमस्कार करके वहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन तथा नमस्कार किया। वन्दन तथा नमस्कार कर के वह जिस दिशा से आया था उसी दिशा की ओर चला गया।

३६

अनन्तर धन्य किसी दिन रात्रि के चतुर्थ प्रहर में धन्य अनगार के मन में इस प्रकार की धर्म-जागरिका (धर्म-विषयक विचारणा) उत्पन्न हुई—

"मैंने इस प्रकार के उदार तप से— यावत् जैसे स्कन्दक ने किया था वैसे ही चिन्तना की आपृच्छना की। स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर चढ़ा। एक मास की संलेखना नौ मास की दीक्षा-पर्याय यावत् काल करके चन्द्रमा से ऊपर यावत् नवग्रैवेयक विमान-प्रस्तर को पार कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

धन्य मुनि का स्वर्ग-गमन होने के पश्चात् परिचर्या करने वाले स्थविर मुनि विपुल पर्वत से नीचे उतरे। यावत् 'धन्यमुनि के ये धर्मोपकरण हैं' उन्होंने भगवान् से इस प्रकार कहा। फिर भगवान् गौतम ने 'भन्ते! ऐसा कह कर भगवान से उसी प्रकार प्रश्न किया जिस प्रकार स्कन्दक के अधिकार में किया था। भगवान् महावीर ने उसका उत्तर दिया यावत् 'धन्य अनगार सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

"भन्ते! धन्य देव की स्थिति कितने काल तक की कही है?

"हे गौतम! तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है।

"से णं भंते ! ताओ देवलोगाओ कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ।"

तं एवं खलु जंबू ! समणेण [जाव] संपत्तेणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।"

पढमं अज्झयणं समत्तं

: ३७ :

"जइ णं भंते ! [जाव]" उक्खेवओ ।

: ३८ :

"एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं[1], कायंदी नयरी । जियसत्तु राया । तत्थ णं कायंदीए नयरीए भद्दा नाम सत्थवाही परिवसइ अड्ढा । तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते सुणक्खत्ते नामं दारए होत्था अहीण० [जाव] सुरूवे पंचधाइपरिक्खित्ते, जहा धण्णो तहा बत्तीसओ दाओ [जाव] उप्पिं पासायवडिंसए विहरइ ।

: ३९ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं । समोसरणं । जहा धण्णो तहा सुणक्खत्तो वि निग्गओ । जहा थावच्चापुत्तस्स तहा निक्खमणं, [जाव] अणगारे जाए ईरिया-समिए [जाव] बंभयारी ।

: ४० :

तए णं से सुणक्खत्ते अणगारे जं चेव दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे [जाव] पव्वइए तं चेव दिवसं अभिग्गहं । तहेव [जाव] बिलमिव [जाव] आहारेइ, संजमेण [जाव] विहरइ । [जाव] बहिया जणवय-विहारं विहरइ । एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ [जाव] संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं से सुणक्खत्ते तेणं उरालेणं [जाव] जहा खंदओ ।

१ समएणं समोसरणं कागंदीए — प० स० भ० ।

"भन्ते ! उस देव लोक से च्यव कर वह धन्यदेव कहाँ जायगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?"

"हे गौतम ! महाविदेह वास में सिद्ध होगा ।

"हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है ।"

प्रथम अध्ययन समाप्त

१७

जम्बू अनगार ने आर्य सुधर्मा से पूछा — 'भन्ते ! यदि यावत्' उत्क्षेप ।

१८

आर्य सुधर्मा जम्बू से इस प्रकार कहने लगे —

"हे जम्बू ! उस काल और उस समय में काकन्दी नाम की एक नगरी थी । वहाँ का राजा जितशत्रु था । उस काकन्दी नगरी में भद्रा नाम की एक सार्थवाही रहती थी । आढ्या यावत् अपरिभूता । उस भद्रा सार्थवाही के सुनक्षत्र नाम का एक पुत्र था । अहीन यावत् सुरूप था । पञ्चधात्री-परिपालित था । धन्य कुमार की तरह बत्तीस श्रेष्ठ यावत् ऊपर के महलों में भोगों में लीन हो गया ।

१९ ।

उस काल और उस समय में भगवान् महावीर वहाँ पधारे । धन्य कुमार की तरह सुनक्षत्र भी निकला । थावच्चापुत्र की तरह निष्क्रमण यावत् अनगार हो गया । ईर्या-समित हो गया । यावत् ब्रह्मचारी हो गया ।

४

तदनन्तर वह सुनक्षत्र जिस दिन भगवान् महावीर के पास मुण्डित हुआ यावत् प्रव्रजित हुआ उसी दिन उसने अभिग्रह (प्रतिज्ञा) लिया यावत् अनासक्त होकर आहार लिया । संयम से यावत् स्थिर होकर विचरण किया । बाहर जनपद में विहार किया । ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया । संयम तथा तप से आत्मा को भावित कर विचरण करने लगा ।

तदनन्तर वह सुनक्षत्र मुनि उस उदार तप से स्कन्दक की तरह कृश हो गया ।

: ४१ :

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। राया निग्गओ। धम्मकहा। राया पडिगओ। परिसा पडिगया।

तए णं तस्स सुणक्खत्तस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि धम्म-जागरियं जहा खंदयस्स। बहू वासा परियाओ। गोय-म-पुच्छा। तहेव कहेइ [जाव] सव्वट्ठसिद्धे विमाणे [1]देवत्ताए उववण्णे। तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई। "से णं भंते!" [जाव] "महाविदेहे सिज्झिहिइ।" बीय अज्झयणं समत्तं।

: ४२ :

एवं सुणक्खत्त-गमेणं सेसा वि अट्ठ भाणियव्वा। नवरं, आणुपुव्वीए दोण्णि रायगिहे, दोण्णि साएए, दोण्णि वाणियग्गामे। नवमो हत्थि-णापुरे। दसमो रायगिहे। नवण्हं भद्दाओ जणणीओ, नवण्ह वि बत्तीसओ दाओ। नवण्हं निक्खमणं थावच्चापुत्तस्स सरिसं। वेहल्लस्स पिया करेइ। छम्मासा वेहल्लए। नव धण्णे। सेसाणं बहू वासा। मास संलेहणा। [2]सव्वट्ठसिद्धे। सव्वे महाविदेहे सिज्झिस्संति। एवं दस अज्झयणाणि।

: ४३ :

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थ-गरेणं सयंसंबुद्धेणं लोगणाहेणं लोगप्पदीवेणं लोगप्पज्जोयगरेणं अभयदएणं सरणदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं धम्मदएणं धम्मदेसएणं धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टिणा अप्पडिहयवरणाणदंसणधरेणं जिणेणं जावएणं बुद्धेणं बोहएणं [3]मुत्तेणं मोयएणं तिण्णेणं तारएणं सिवं अयलं अरुयं अणंतं अक्खयं अव्वाबाहं अपुणरावत्तयं सिद्धिगइ-णामधेयं ठाणं संपत्तेणं अणुत्तरोववाइय-दसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।"

अणुत्तरोववाइयदसाओ समत्ताओ।

---

१ देवे उव — पु० स० म०।

२ सिद्धे महाविदेहे सिज्झणा — मा० मु०।

३ मोक्केणं M C Modi — मा० मु०।

४१

उस काल और उस समय में राजगृह नाम का एक नगर था। गुणशिलक एक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। भगवान् महावीर पधारे। परिषदा निकली। राजा भी निकला। धर्म-कथा हुई। राजा वापिस चला गया। परिषदा भी वापिस चली गई।

अनन्तर सुनक्षत्र ने अन्य किसी दिन रात्रि के चतुर्थ पहर में धर्म जागरणा की जिस प्रकार स्कन्दक ने की थी। बहुत वर्षों तक संयम का पालन किया। गौतम की पृच्छा। यावत् सुनक्षत्र अनगार सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। तेतीस सागरोपम की स्थिति।

गौतम ने पूछा— "भगवन्! वह सुनक्षत्रदेव देवलोक से च्यवकर कहाँ पैदा होगा?

यावत् "गौतम! महाविदेह वास में सिद्ध होगा।

द्वितीय अध्ययन समाप्त

४२

इस प्रकार सुनक्षत्र की तरह शेष आठ कुमारों का वर्णन भी समझ लेना चाहिए। विशेष यह है कि अनुक्रम से दो राजगृह में, दो साकेत में, दो वाणिज्य ग्राम में, नवमां हस्तिनापुर में और दसवां राजगृह में। नौ की जननी भद्रा। नौ का बत्तीस दहेज। नौ का निष्क्रमण थावच्चा पुत्र की तरह। वेहल्ल का निष्क्रमण उसके पिता ने किया। छह मास की पर्याय वेहल्ल की, नौ मास की पर्याय धन्य की, शेष की पर्याय बहुत वर्षों की। एक मास की संलेखना। सर्वार्थसिद्ध विमान में उपपात (जन्म)। सब महाविदेह वास में सिद्ध होंगे। इस प्रकार दस अध्ययन पूर्ण हुए।

तृतीय वर्ग समाप्त

४३

आर्य सुधर्मा ने कहा— "हे जम्बू! धर्म की आदि करने वाले, धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयं ही सम्यग् बोध को पाने वाले, लोक के नाथ, लोक में प्रदीप, लोक में प्रद्योत करने वाले, अभय देने वाले, शरण के दाता, नेत्र देने वाले, धर्म-मार्ग के दाता, धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के उत्तम आचरण द्वारा चार गति का अन्त करने वाले धर्म-चक्रवर्ती, अप्रतिहत तथा श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धर्ता, स्वयं राग-द्वेष के विजेता, अन्यों को राग-द्वेष से विजय दिलाने वाले, स्वयं बोध को पाने वाले तथा दूसरों को बोध देने वाले, स्वयं मुक्त तथा दूसरों को मुक्त कराने वाले, स्वयं तिरे हुए तथा दूसरों को तारने वाले तथा उपद्रवरहित, अचल, रोग रहित, अन्त रहित, अक्षय, बाधा रहित, पुनरागमन से रहित सिद्धिगति नामक स्थान को समीचीनता से प्राप्त करने वाले श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तरोपपातिक दशा के तृतीय वर्ग का यह अर्थ कहा है।"

अनुत्तरोपपातिक समाप्त

अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र नामक नवम अङ्ग समाप्त

४४

अनुत्तरोपपातिक दशा का एक श्रुत-स्कन्ध है। तीन वर्ग हैं। तीन दिनों में उद्दिष्ट होता है—अर्थात् पढ़ाया जाता है। उसके प्रथम वर्ग में दश उद्देशक हैं द्वितीय वर्ग में तेरह उद्देशक हैं, तृतीय वर्ग में दश उद्देशक हैं। शेष ज्ञाताधर्मकथासूत्र के समान समझ लेना चाहिए।

अरिहन्तों को नमस्कार

संस्कृत टीका

कं० १४. 'कडिपत्तस्स' त्ति कटी एव पत्र प्रतलत्वेन अवयवद्वयरूपतया च सर्गादिवृक्षदल[1] कटी पत्र, तस्य। पाठान्तरेण कटीपट्टस्य।

'उष्ट्रपाद इति वा' करभचरणो हि भागद्वयरूप अनुन्नतश्चाधस्ताद् भवतीति, तेन पुतप्रदेशस्य[2] साम्यम्।

'जरग्गपाए इ' जरद्गवपाद।

क० १५ 'उयरभायणस्स' त्ति उदरमेव भाजन क्षाममध्यभागतया पिठरादि उदरभाजनम्, तस्य।

'सुक्कदिए इ वा' इति शुष्क शोषमुपगतो दृति चर्ममयजलभाजनविशेष।

'भज्जणयकभल्ले' त्ति चणकादीना भर्जन पाकविशेषापादनम्, तदर्थं यत् कभल्ल कपाल घटादिकर्प्पर तत्, तथा।

'कट्ठकोलंबए इ' शाखिशाखानामवनतमग्र कोलम्ब उच्यते। भाजन वा कोलम्ब उच्यते। काष्ठस्य कोलम्ब इव काष्ठकोलम्ब, परिदृश्यमानावनतहृदयास्थिकत्वात्।

'एवामेव उदरं सुक्कं लुक्खं निम्मंसं' इत्यादि पूर्ववत्।

क० १६. 'पांसुलियाकडयाणं' ति पाशुलिका पार्श्वास्थीनि, तासा कटकौ कटौ, पाशुलिका-कटौ, तयो।

'थासयावली इ व' त्ति स्थासका दर्पणाकृतय स्फुरकादिषु भवन्ति, तेषामुपर्युपरि स्थितानामावली पद्धति स्थासकावली, देवकुलामलसारकाकृतिरिति भाव।

'पाणावली इ व' त्ति पाणशब्देन[3] भाजनविशेष उच्यते, तेषामावली या सा तथा।

---

१ टीकाया सर्वप्रतिषु 'सर्गादि' इत्येव पाठ उपलभ्यते। अत्र वृक्षवाची 'सर्ग' शब्द उपयोगी, परन्तु निघण्टु-आदर्श, अमरकोशे, अभिधानचिन्तामणिकोशे च न क्वापि वृक्षवाची 'सर्ग' शब्द उपलभ्यते। परन्तु वृक्षवाची 'सर्ज' शब्दस्तु तत्र सर्वत्र उपलभ्यते —

'सर्जको ह्यजकर्ण स्यात् शाल मश्चिपत्रक।'— नि० पूर्वार्द्ध, पृ० १२१।

'सर्ज शालभेद एव।'—वही, पृ० १२२।

'साले तु सर्ज कार्श्य-' इत्यादि—अमर० का० २, वनौ० वर्ग, श्लो० ६४। "सालस्तु सर्ज" अभिधान० कां० ४ श्लो० २०४।

२ "पुतौ स्फिजौ कटिप्रोथौ।"—अभिधान, का० ३, श्लोक २७३। 'कूला' इति गुजरातीशब्द पुतवाची। "कटिस्थमासपिण्डया 'कूला' इति ख्यातयो कटि। तस्या प्रोथौ मासपिण्डौ कटि-प्रोथौ।" – अमर० महेश्वरटीका, का० २, मनुष्यवर्ग, श्लोक स० ७५।

३ सस्कृतभाषाया प्राकृतभाषाया च क्वापि शब्दकोशे केवल 'पान' शब्द पात्रवाची न दृष्ट, परन्तु 'चषक अस्त्री पानपात्रम्' – अमर० का० २, शूद्र व० श्लो० ४३ इत्येव भाजनविशेषो मद्यपात्रपर्याय 'पानपात्र' शब्द पात्रवाची दृश्यते। स एव च भामा-सत्यभामान्यायेन अत्र पात्रार्थे प्रयुक्तो भवेत् इति प्रतिभाति।

सू० २२ **'करगगीवा इ व'** त्ति वार्घटिकाग्रीवा। कुण्डिका आलुका।[1]

'उच्चट्ठवणए इ व' त्ति उच्चस्थापनकम्। एभिस्त्रिभिरुपमानैर्ग्रीवाया कृशता उक्ते ति।

सू० २३. **'हणुयाए'** त्ति चिबुकस्य।

'लाउयफले इ व' त्ति अलाबुफल तुम्बिनीफलम्।

'हकुवफले' त्ति [2]हकुवी वनस्पति-विशेपस्तस्य फलमिति।

'अबगऽट्ठिया इ व' त्ति आम्रकस्य फलविशेषस्य अस्थीनि[3] इति। आतपे दत्तानि शुष्काणि इत्यादि सर्वमनुसर्त्तव्यम्।

सू० २४. **'सुक्क-जलोय इ व'** त्ति जलौक द्वीन्द्रियजलजन्तुविशेप।

'सिलेसगुलिय' त्ति श्लेष्मणो गुटिका वटिका।

'अलत्तगुलिय' त्ति अलक्तक लाक्षारस। एतानि हि वस्तूनि शुष्काणि विच्छायानि सकोचवन्ति भवन्तीति, ओष्ठोपमानतया उक्तानि। जिह्वावर्णक प्रतीत।

सू० २६. **'अंबगपेसिय'** त्ति आम्र प्रतीतम्, तस्य पेशिका खण्ड। *अ वालक* फलविशेप।

मातुलिंगम्—बीजपूरकम् इति।

सू० २७. **'वीणाछिड्डे'** त्ति वीणारन्ध्रम्।

'वद्धीसगच्छिड्डे इ व' त्ति वद्धीसको वाद्यविशेप।

'पभायतारगा इ व' त्ति प्रभात-समये तारका—ज्योति ऋक्षमित्यर्थ। सा हि स्तोकतेजोमयी भवतीति तया लोचनमुपमितमिति। पाठान्तरेण *'प्राभातिकतारका'* इति।

सू० २८. **'मूला'छल्लिया इ व'** त्ति मूलक कन्दविशेपस्तस्य छल्ली त्वक्, सा हि प्रतला भवतीति तयोपमान कर्णयो कृतम्।

'वालु'क-छल्लिया' वालु कं चिर्भटम्।[5]

'कारेल्लय-छल्लिया' त्ति कारेल्लकम्[6]—वल्लीविशेषफलमिति। क्वचिच्च नीतिपदं दृश्यते, न चावगम्यते।

सू० २९ **'धण्णस्स सीम त्ति'** धण्णस्स ण अणगारस्स सीसस्स अयमेयारूवे तवरूवलावण्णे होत्था।

---

१ 'वार्घान्यां तु गलन्ती भालू ककरी करक'—अ० चि०, कां० ४, श्लो० ८७।

२ हकुवो व—पु० स० म०।

३ —नि मज्जा भात—M C Modi

४ भापायाम् 'मूला' 'मूली' वा इति प्रसिद्ध शाकम्।

५ भापायाम् 'चीभडा' इति प्रसिद्ध फलम्।

६ भापायाम् 'करेला' 'कारेलु' वा इति प्रसिद्ध शाकम्।

'तरुणगमलाउय' त्ति तरुणक कोमलम् । 'लाउयं' अलाबु तुम्बकमित्यर्थ ।

'तरुणगएलालुए त्ति' आमुकं कन्दविशेष तच्च अनेकप्रकारमिति विशेषपरिग्रहार्थम् एलालुकमित्युक्तम् ।

'सिण्हालए इ वा' त्ति सिण्हालक फलविशेषो यत् संफ्रमकमिति लोके प्रतीतम् । तच्च नग्गं यावत्करणात् छिण्णं उण्हे दिण्णं सुक्कं समाणं मिलायमाणं चिट्ठइ त्ति दृश्यम् ।

'एवामेव' त्ति एवामेव धन्यस्य अणगारस्य सीसं सुक्कं लुक्खं निम्मंसं अट्ठिचम्म छिरत्ताए पण्णायइ नो चेव णं मंससोणियत्ताए त्ति । अयमप्यालापक प्रत्यङ्गवर्णके दृश्य ।

सू० ३ नवरम् उदरभाजन-कर्ण-जिह्वा-ओष्ठवर्णकेषु अस्थि इति पदं न भण्यते अपि तु 'चम्मछिराए पण्णायइ त्ति वक्तव्यमिति ।

सू० ३१ पादाभ्यामारभ्य मस्तकं यावद् वर्णितो धन्यसत्कमुनि । पुनस्तमेव प्रकारान्तरेण वर्णयन्नाह —

'धण्णे णं' इत्यादि धन्योऽनगार । शंकारा वाक्यालङ्कारार्थ । किंभूत ?

'सुक्केणं' मांसाद्यभावात् ।

'लुक्खेणं' त्ति बुभुक्षायोगात् रूक्षेण पादजंघोरुणा भवयवजातेन लक्षित इति गम्यते । समाहारद्वन्द्वत्वादिति ।

तथा 'विगय-तडिकरालेणं कडि-कडाहेणं' त्ति विकृतं बीभत्सं तच्च तत्तटीषु पार्श्वेषु करालम् उन्नतं क्षीणमांसतया उन्नतास्थिकत्वात् विकटतटीकरालम् तत कटी एव कटाहं कच्छपपृष्ठं भाजनविशेषो वा कटीकटाहम् तेन लक्षित इति गम्यते । एवं सर्वत्रापि ।

'पिट्ठमवस्सिएणं' त्ति पृष्ठं पश्चाद्भागम् अवाश्रितेन तत्र लग्नेन महत्पलीहादी नामपि क्षीणत्वात् उदरभाजनम्, तेन ।

'जोइज्जमाणेहिं' त्ति निर्मांसतया दृश्यमानै ।

पांसुलियकडएहिं त्ति पार्श्वास्थिकटकै कटकता च तेषा वलयाकारत्वात् ।

'अक्खसुत्तमाला इ वा' त्ति अक्षा रुद्राक्षा फलविशेषास्तेषां सम्बन्धिनी सूत्रप्रतिबद्धा माला आवली या सा तथा तेन अक्षमालैनिर्मांसतयाप्रतिभासनत्वात्, पृष्ठकरण्डकसन्धिभिरिति प्रतीतम् ।

तथा 'गङ्गातरङ्गभूतेन' गङ्गाकल्लोलकल्पेन परिदृश्यमानास्थिकत्वात् उवरे (उरसि) तच्च कटकस्य अन्तरसमयस्य देशभागा विभाग इति वाक्यम् प्रसङ्गेन ।

• ———— ।

तथा शुष्कसर्पसमानाभ्या बाहुभ्याम्।

'सिढिलकडाली विव' कटालिका—अश्वाना मुखमयमनोपकरणविशेपो लोहमय तद्वल्लम्बमानाभ्यामग्रहस्ताभ्या बाह्वोरग्रभूताभ्या [1]शयाभ्यामित्यर्थ ।

'कंपणवाइए विव' त्ति कम्पनवातिक कम्पनवायुरोगवान्। **वेवमाणीए त्ति** वेपमानया शीर्षघटया [2]शिरोघटिकया लक्षित ।

प्रम्लानवदनकमल प्रतीतम्।

'उब्भडघडमुहे' त्ति उद्भट विकराल क्षीणप्रायदशनच्छदत्वाद् [3]घटकस्येव मुख यस्य स तथा।

'[4]उच्छुद्धनयणकोसे' त्ति 'उच्छुद्ध' त्ति अन्त प्रवेशितो नयनकोशौ लोचनकोशकौ यस्य स तथा।

'जीवंजीवेणं गच्छइ' जीव वीर्येण न तु शरीरवीर्येणेत्यर्थ ।

शेषम् अन्तकृद्दशावदिति।

अनुत्तरोपपातिकाख्यनवमाङ्गप्रदेशविवरण समाप्तमिति।

शब्दा केचन नार्थतोऽत्र विदिता केचित्तु पर्यायत
सूत्रार्थानुगते समूह्य भणतो यज्जातमाग पदम् ।
वृत्तावत्र तकज्जिनेश्वरवचाभाषाविधौ कोविदै
मशोध्य विहितादरैर्जिनमतोपेक्षा यतो न क्षमा ॥१॥

प्रत्यक्षर [5]निरूप्यास्य, ग्रन्थमान विनिश्चितम्।
[6]द्वाविशतिशतमिति, चतुर्णा वृत्तिसंख्यया ॥२॥

---

१ 'पञ्चशाख शय पाणि' – अमर०, द्वि० का, मनु० व०, श्लो० ८१।
२ शिर कटिकया – M C Mod1
३ घटकवदेव – M C Mod1
४ उब्बुड्हन – भा० म० मु०।
५ –प्यासा ग्र – पु० स० भ०।
६ वृत्तीना तिसृणा श्लोकसहस्र त्रिशताधिकम् – पु० स० भ०।

टिप्पण

राजगृह – पृष्ठ १

मगध जन-पद की राजधानी तथा जैन संस्कृति और बौद्ध-संस्कृति का मुख्य केन्द्र था।
जैन परम्परा के अनुसार राजगृह में भगवान् महावीर ने १४ वर्षावास किए थे।
भगवान् महावीर के यहाँ पर दो-सौ से अधिक बार समवसरण लगे थे।

हजारों मनुष्यों ने यहाँ पर भगवान् महावीर से श्रावक-धर्म तथा श्रमण-धर्म स्वीकृत किया था।

प्राचीन भारत का यह एक सुन्दर समृद्ध और वैभवशाली नगर था। श्रेणिक के पिता प्रसनजित ने राजगृह[२] बसाया था।

जरासन्ध के युग में भी राजगृह मगध जन-पद की राजधानी था।

बौद्ध ग्रन्थों में भी राजगृह[३] का प्रचुर उल्लेख उपलब्ध होता है।

राजगृह का दूसरा नाम गिरिव्रज भी था क्योंकि इसके आस-पास पांच[४] पर्वत हैं।

वर्तमान में राजगृह "राजगिर" नाम से प्रसिद्ध है। राजगिर बिहार प्रान्त में पटना से पूर्व-दक्षिण और गया से पूर्वोत्तर में स्थित है।

सुधर्मा – पृष्ठ १

भगवान् महावीर के पंचम गणधर और जम्बू के गुरु थे।

आगमों में प्रायः सर्वत्र सुधर्मा का उल्लेख मिलता है, परन्तु विशेष परिचय नहीं।

सुधर्मा कोल्लाग संनिवेश के रहने वाले अग्निवैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम धम्मिल तथा माता का नाम भद्दिला था।

यह वेद-वेदांग विद्याओं में पारंगत परम विद्वान् थे और पांच-सौ शिष्यों के पूजनीय गुरु भी थे।

सुधर्मा[५] का विश्वास जन्मान्तर सादृश्य-वाद में था। मरणोत्तर जीवन में पुरुष पुरुष बनता है और पशु पशु बनता है।

---

१ प्रतिहासविद् आचार्य श्री कल्याण विजय जी।

२ प्राचीन युग में क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर था। यहाँ चणकपुर बसाया गया उसके क्षीण होने के बाद यहीं पर ऋषभपुर नगर हुआ। उसके नष्ट होने के बाद में कुशाग्रपुर नगर बसा जब वह जल गया तब राजा प्रसेनजित् ने राजगृह नगर बसाया। —देखिए, आवश्यक निर्युक्ति अवचूर्णि।

३ पण्डित बेचरदास की डोषी।

४ वैभार, विपुल उदय सुवर्ण रत्नगिरि।

५ "पु ... ... [illegible]।

इसके विपरीत सुधर्मा को वेदो मे जन्मान्तर[1] वैसादृश्य-वाद के समर्थक वाक्य भी मिलते थे। सुधर्मा दोनो प्रकार के परस्पर विरुद्ध वाक्यो से सशय-ग्रस्त हो गए थे।

भगवान् महावीर ने पूर्वापर वेद वाक्यो का समन्वय करके जन्मान्तर वैसादृश्य सिद्ध कर दिया। अपनी शका का सम्यक समाधान हो जाने पर सुधर्मा अपने पाच-सौ शिष्यो सहित भगवान् के शिष्य हो गए। वेदानुयायी सुधर्मा को भगवान् ने वेद वाक्यो से ही समझाया। परन्तु यह नही कहा कि वेद मिथ्या हैं।

सुधर्मा ने ५० वर्ष की आयु मे दीक्षा ली, ४२ वर्ष तक छद्मस्थ रहे। महावीर निर्वाण के १२ वर्ष बाद वे केवली हुए और ८ वर्ष केवली अवस्था मे रहे।

गणधरो मे सुधर्मा सब से अधिक दीर्घ-जीवी थे। भगवान् ने सुधर्मा को सर्वप्रथम गण समर्पण किया था। अन्य गणधरो ने भी अपने-अपने निर्वाण समय पर अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित किए थे।

जम्बू – पृष्ठ १

आर्य सुधर्मा के शिष्य जम्बू एक परम जिज्ञासु के रूप मे आगमो मे सर्वत्र दीख पडते हैं।

जम्बू राजगृह नगर के समृद्ध, वैभवशाली-इभ्य-सेठ के पुत्र थे पिता का नाम ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। जम्बूकुमार की माता ने जम्बूकुमार के जन्म से पूर्व स्वप्न मे जम्बू वृक्ष देखा था, इसी कारण पुत्र का नाम जम्बूकुमार रखा।

सुधर्मा की वाणी से जम्बूकुमार के मन में वैराग्य जागा। परन्तु माता-पिता के अत्यन्त आग्रह से विवाह की स्वीकृति दी। आठ इभ्य-वर सेठो की कन्याओ के साथ जम्बूकुमार का विवाह हो गया।

जिस समय जम्बूकुमार अपनी आठ नव विवाहिता पत्नियो को प्रतिबोध दे रहे थे, उस समय एक चोर चोरी करने को आया। उसका नाम प्रभव था। जम्बूकुमार की वैराग्य पूर्ण वाणी सुनकर वह भी प्रतिबुद्ध हो गया।

५०१ चोर, ८ पत्निया, पत्नियो के १६ माता-पिता, स्वय के २ माता-पिता और स्वय जम्बूकुमार—इस प्रकार ५२८ ने एक साथ सुधर्मा के पास दीक्षा ग्रहण की।

जम्बूकुमार १६ वर्ष गृहस्थ मे रहे, २० वर्ष छद्मस्थ रहे, ४४ वर्ष केवली पर्याय मे रहे। ८० वर्ष की आयु भोग कर जम्बू स्वामी अपने पाट पर प्रभव को छोडकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

अङ्ग – पृष्ठ १

साक्षात् जिन-भाषित एव गणधर-निबद्ध जैनो का सूत्र-साहित्य अग कहलाता है। आचाराग से लेकर विपाक श्रुत तक के ग्यारह अङ्ग तो अभी तक भी विद्यमान हैं। परन्तु

१ "शृगालो वै एष जायते, य सपुरीषो दह्यते।"

वर्तमान में बारहवाँ अङ्ग अनुपलब्ध है जिसका नाम 'दृष्टिवाद' है। अतः वर्तमान में आचारांग से लेकर विपाक-सूत्र तक के ग्यारह सूत्रों की अङ्ग संज्ञा है। बारहवाँ अङ्ग 'दृष्टिवाद'—चतुर्दश पूर्वधर आचार्य भद्रबाहु तथा दश पूर्वधर वज्र स्वामी के बाद में सारा पूर्व साहित्य अर्थात् सारा 'दृष्टिवाद' विच्छिन्न हो गया। अतः अङ्ग शब्द वर्तमान में ग्यारह अङ्गों का ही वाचक है।

अन्तकृद् दशा — पृष्ठ १

यह आठवाँ अङ्ग-सूत्र है जिस में अपनी आत्मा का अधिकाधिक विकास कर के इसी वर्तमान जीवन काल में ही संपूर्ण आत्म-सिद्धि का लाभ पाने वाले और अंततः मुक्त होने वाले साधकों की जीवन-चर्या का तपोमय सुन्दर वर्णन है।

अनुत्तरोपपातिक दशा — पृष्ठ १

यह नवमां अङ्ग-सूत्र है, जिसमें तत्तीस महापुरुषों की तपोमय जीवन-चर्या का सुन्दर वर्णन है। धन्य अनगार की महती तपोमयी साधना का सांगोपांग वर्णन है। इस में वर्णित पुण्य अनुत्तरोपपाती हुए हैं, अर्थात्—विजयादि अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए हैं, और भविष्य में एक भव को अर्थात्—मनुष्य भव पाकर सिद्ध बुद्ध और मुक्त होंगे।

गुण-शिलक-चैत्य — पृष्ठ ४

राजगृह नगर के बाहर ईशान कोण में एक चैत्य (उद्यान) था।

राजगृह के बाहर अन्य बहुत-से उद्यान होंगे परन्तु भगवान् महावीर गुण-शिलक उद्यान में ही विराजित होते थे।

यहाँ[1] पर भगवान् के हाथों से सैकड़ों श्रमण और श्रमणियाँ तथा हजारों श्रावक श्राविकाएं बनी थी। भगवान् महावीर के ग्यारह गणधरों ने इसी गुण शिलक उद्यान में अनशन पूर्वक निर्वाण प्राप्त किया था। वर्तमान में गुणावा —जो नवादा स्टेशन से लग भग तीन मील पर है प्राचीन काल का यही गुण-शिलक चैत्य माना जाता है।

श्रेणिक राजा — पृष्ठ ४

मगध देश का सम्राट् था। अनाथी मुनि से प्रतिबोधित होकर भगवान् महावीर का परम भक्त हो गया था। ऐसी एक जन-श्रुति है।

राजा श्रेणिक का वर्णन जैन ग्रन्थों तथा बौद्ध ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है।

इतिहासकार कहते हैं कि श्रेणिक राजा शैशु कुल और शिशुनाग वंश का था।

बौद्ध ग्रन्थों में 'सेनिय' और 'बिंबिसार' ये दो नाम मिलते हैं। जैन ग्रन्थों में 'सेणिय भिंभसार और भंभासार'—ये नाम उपलब्ध हैं।

भिंभसार और भंभासार नाम कैसे पड़ा? इस सम्बन्ध में श्रेणिक के जीवन का एक सुन्दर प्रसङ्ग है—

श्रेणिक के पिता राजा प्रसेनजित कुशाग्रपुर में राज्य करते थे।

---

१ उक्त कल्याण विजय की कृति।

एक दिन की बात है, राजप्रासाद मे सहसा आग लग गई। हरेक राजकुमार अपने अपनी प्रिय वस्तु लेकर बाहर भागा। कोई गज लेकर, तो कोई अश्व लेकर, कोई रत्न-मणि लेकर। परन्तु श्रेणिक मात्र एक "भभा"[1] लेकर ही बाहर निकला था।

श्रेणिक को देखकर दूसरे भाई हँस रहे थे, पर पिता प्रसेनजित प्रसन्न थे, क्योंकि श्रेणिक ने अन्य सब कुछ छोडकर एक मात्र राज्य चिह्न की रक्षा की थी।

इस पर से राजा प्रसेनजित ने उसका नाम भिभसार, या भभासार रखा। भिभसा ही सभवत आगे चलकर उच्चारण भेद से बिंबसार बन गया।

धारिणी देवी – पृष्ठ ४

श्रेणिक राजा की पटरानी थी। धारिणी का उल्लेख आगमो मे प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है।

सस्कृत साहित्य के नाटकों में प्राय राजा की सबसे बडी रानी के नाम के आगे 'देवी' विशेषण लगाया जाता है, जिसका अर्थ होता है—रानियों मे सबसे बडी अभिषिक्त रानी, अर्थात्—पटरानी।

राजा श्रेणिक के अनेक रानिया थी, उनमे धारिणी मुख्य थी। इसीलिए धारिणी के आगे 'देवी' विशेषण लगाया गया है। देवी का अर्थ है—पूज्या।

मेघकुमार इसी धारिणी देवी का पुत्र था, जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

सिंह-स्वप्न – पृष्ठ ४

किसी महापुरुष के गर्भ मे आने पर उसकी माता कोई श्रेष्ठ स्वप्न देखती है। इस प्रकार का वर्णन भारतीय साहित्य मे भरा पडा है। जैन साहित्य मे और बौद्ध साहित्य में इस प्रकार के वर्णन प्रचुर मात्रा मे है।

बुद्ध की माता माया देवी ने बुद्ध के गर्भ मे आने पर रजत-राशि जैसा षड् दन्त गज देखा था।[2]

तीर्थङ्कर एव चक्रवर्ती की माता १४ महा स्वप्न देखती है। वासुदेव की माता १४ मे से कोई भी सात स्वप्न देखती है। बलदेव की माता १४ मे से कोई भी चार स्वप्न देखती है। इसी प्रकार माण्डलिक राजा की माता एक महा स्वप्न देखती है।[3]

सिंह का स्वप्न वीरता सूचक और मङ्गलमय माना गया है।

---

१ भेरी, सग्राम विजय सूचक वाद्य विशेष।

२ ललित विस्तर, गर्भावक्रान्ति परिवर्त।

३ कल्प-सूत्र, त्रिशला स्वप्नाधिकार।

मेघकुमार – पृष्ठ ४

मगध सम्राट् श्रेणिक और धारिणी देवी का पुत्र था जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

एक बार भगवान् महावीर राजगृह के गुणशिलक उद्यान में पधारे। मेघकुमार ने भी उपदेश सुना। माता पिता से अनुमति लेकर भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की।

जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी रात को मुनियों के यातायात से पैरों की रज और ठोकर लगने से मेघ मुनि व्याकुल हो गया अशान्त बन गया।

भगवान् ने पूर्वभवों का स्मरण कराते हुए संयम में धृति रखने का उपदेश दिया जिससे मेघ मुनि संयम में स्थिर हो गया।

एक मास की संलेखना की। सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ। महाविदेह वास से सिद्ध होगा।

—ज्ञातासूत्र अध्ययन १

स्कन्दक – पृष्ठ ४

स्कन्दक संन्यासी श्रावस्ती नगरी के रहने वाले गर्द भालि परिव्राजक का शिष्य था और गौतम स्वामी का पूर्व मित्र था। भगवान् महावीर के शिष्य पिङ्गलक निर्ग्रन्थ के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सका फलतः श्रावस्ती के लोगों से जब सुना कि भगवान् महावीर कृयंगला नगरी के बाहर छत्र-पलाश उद्यान में पधारे हैं तो स्कन्दक भी भगवान् के पास जा पहुँचा। अपना समाधान मिलने पर वह वहीं पर भगवान् का शिष्य हो गया।

स्कन्दक मुनि ने स्थविरों के पास रहकर ११ अङ्गों का अध्ययन किया।

भिक्षु की १२ प्रतिमाओं की क्रम से साधना की आराधना की।

गुण रत्न संवत्सर तप किया। शरीर दुर्बल क्षीण और अशक्त हो गया। अन्त में राजगृह के समीप विपुल-गिरि पर जाकर एक मास की संलेखना की। काल करके १२वें देवलोक में गया। वहाँ से महाविदेह वास से सिद्ध होगा।

स्कन्दक मुनि की दीक्षा-पर्याय १२ वर्ष की थी।

—भगवती शतक २ उद्देश १।

गौतम (इन्द्र भूति)—पृष्ठ ४

आपका मूल नाम इन्द्रभूति है परन्तु गोत्रतः गौतम नाम से आकाल-वृद्ध प्रसिद्ध हैं।

गौतम—भगवान् महावीर के सबसे बड़े शिष्य थे। भगवान् के धर्म-शासन के यह कुशल शास्ता थे—प्रथम गणधर थे।

मगध देश के गोबर ग्राम के रहने वाले गौतम गोत्रीय ब्राह्मण वसुभूति के यह ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी माता का नाम पृथिवी था।

इन्द्रभूति वैदिक धर्म के प्रखर विद्वान् थे विराट् विचारक थे महान् तत्त्व वेत्ता थे।

एक वार इन्द्रभूति सोमिल आर्य के निमन्त्रण पर पावापुरी मे होने वाले यज्ञोत्सव मे गए थे। उसी अवसर पर भगवान् महावीर भी पावापुरी के बाहर महासेन उद्यान मे पधारे हुए थे। भगवान् की महिमा को देखकर इन्द्रभूति उन्हे पराजित करने की भावना से भगवान् के समवसरण मे आया, किन्तु वह स्वय ही पराजित हो गया। अपने मन का सशय दूर हो जाने पर वह अपने पाच-सौ शिष्यो सहित भगवान् का शिष्य हो गया। गौतम प्रथम गणधर हुए।

आगमो मे और आगमोत्तर साहित्य म गौतम के जीवन के सम्वन्ध मे बहुत कुछ लिखा मिलता है।

इन्द्रभूति गौतम दीक्षा के समय ५० वर्ष के थे। ३० वर्ष साधु पर्याय मे और १२ वर्ष केवली-पर्याय मे रहे। अपने निर्वाण के समय अपना गण सुधर्मा को सौंपकर गुण शिलक चैत्य मे मासिक अनशन करके भगवान् के निर्वाण से १२ वर्ष बाद ९२ वर्ष की अवस्था मे, निर्वाण को प्राप्त हुए।

शास्त्रो मे गणधर गौतम का परिचय इस प्रकार का दिया गया है। वे भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य थे। सात हाथ ऊँचे थे। उनके शरीर का सस्थान और सहनन उत्कृष्ट प्रकार का था। सुवर्ण रेखा के समान गौर थे। उग्र तपस्वी, महा तपस्वी, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचारी, और सक्षिप्त विपुल तेजो लेश्या सम्पन्न थे। शरीर मे अनासक्त थे। चौदह पूर्वधर थे। मति, श्रुत, अवधि और मन पर्याय—चार ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षिर सन्निपाती थे, वे भगवान् महावीर के समीप मे उक्कुड आसन से नीचा सिर कर के बैठते थे। ध्यान मुद्रा मे स्थिर रहते हुए, सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

गणधर गौतम का दूसरा परिचय इस प्रकार है —

उपासक दशाग मे जब आनन्द श्रावक ने अपने को अमुक मर्यादा तक के अवधि ज्ञान प्राप्ति की बात की, तो इन्द्रभूति गणधर ने कहा कि इतनी मर्यादा तक का अवधि ज्ञान श्रावक को नही हो सकता। तब आनन्द ने कहा—मुझे इतना स्पष्ट दीख रहा है। अत मेरा कथन सद्भूत है। यह सुनकर गणधर गौतम शकित हो गए और अपनी शङ्का का निवारण करने के लिए भगवान् के पास पहुँचे। भगवान् ने आनन्द की बात को सही बताया, और आनन्द श्रावक से क्षमापना करने को कहा।

—उपासकदशानुसार

विपाक सूत्र में मृगापुत्र राजकुमार का जीवन आता है, उसमे उसे भयङ्कर रोग-ग्रस्त कहा गया है, उसके शरीर से असह्य दुर्गन्ध आती थी, जिस से उसको तल घर मे रखा जाता था। एक बार गणधर गौतम मृगापुत्र को देखने गए। उसकी वीभत्स रुग्ण अवस्था देख कर चार ज्ञान के धारक, चतुर्दशपूर्वी और द्वादशाग वाणी के प्रणेता गणधर गौतम ने कहा—"मैंने नरक तो नही देखे, किन्तु यही नरक है।"

—विपाक-सूत्र के अनुसार।

गौतम के सम्बन्ध में एक और घटना प्रचलित है जिसका उल्लेख मूल आगमों में तो नहीं किन्तु उत्तर कालीन साहित्य में है।

उत्तराध्ययन सूत्र के १० वें अध्ययन की नियुक्ति में भगवान् महावीर के मुख से इस प्रकार कहलवाया गया है कि 'अष्टापद सिद्ध पर्वत है अतः जो चरम शरीरी है वही उस पर चढ़ सकता है दूसरा नहीं।' भगवान् का उक्त कथन सुनकर जब देव समवसरण से बाहर निकले तब 'अष्टापद सिद्ध पर्वत है'—ऐसी आपस में चर्चा कर रहे थे। गौतम गणधर ने देवों की यह बातचीत सुनी। गणधर गौतम द्वारा प्रतिबोधित शिष्यों को केवलज्ञान हो जाता था पर गौतम को नहीं होता था, इससे गौतम खिन्न हो गए, तब भगवान् ने कहा—'गौतम! शरीर के नष्ट हो जाने पर मैं और तुम समान हो जाएंगे। तू अधीर मत बन।'

इस प्रकार भगवान् के कहने पर भी गौतम को संतुष्टि न हुई, अधृति बनी ही रही। भगवान् की उक्त बात सुनने पर भी गणधर गौतम अष्टापद पर गए, और जब वहाँ से लौट कर भगवान् के पास आए, तब भगवान् ने कहा—

'किं देवाणं वयणं गिज्झं आतो जिणवराणं?'

अर्थात् देवों का वचन मान्य है अथवा जिनवरों का?

भगवान् के इस कथन को सुनकर गणधर गौतम ने अपने मिथ्याचार की क्षमा मांगी।

इस प्रसङ्ग पर टीकाकार शान्तिसूरि कहते हैं कि—'असमद्वचनतः तत्रार्थेऽपि तत्प्रत्यय विमिदयमपि विहितवान् देववचनात् तु सञ्जातप्रत्ययः तथेति प्रतिपद्य अष्टापदं प्रति प्रयात इत्यहो मोहविजृम्भितमित्युक्त भवति।'

अर्थात् मेरे सैकड़ों बार कहने पर भी तुझे विश्वास नहीं आया और देवों से एक बार सुनने पर ही तू अष्टापद के लिए चल पड़ा यह सब तेरे मोह भाव की लीला है।

—शाह्य टीका पृ० ३२१

उत्तराध्ययन के टीकाकार आचार्य नेमिचन्द्र ने भी गौतम की अष्टापद-सम्बन्धी उक्त कथा का अवतरण लिया है। उसमें लिखा है कि—'तस्य गोयमसामिस्स सम्मत्तमोहणीय कम्मोदयवसेण चिंता जाया मा णं न सिज्झेज्जामि त्ति।'

—नेमिचन्द्र टीका पृ० १५४।

भगवान् के निश्चित आश्वासन देने पर भी गणधर गौतम को सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के उदय-वश इस प्रकार की चिन्ता हो गई थी कि कदाचित् मैं सिद्ध पद न पा सकूं गा। उक्त चिन्ता के निवारण के लिए ही वे अष्टापद पर गए।

गणधर गौतम के जीवन-सम्बन्ध में इस प्रकार के विभिन्न वर्णन उपलब्ध हैं। विद्वान् विचारकों एवं समीक्षकों का कर्तव्य है कि वे उक्त प्रसङ्गों के तथ्यातथ्य का ऐतिहासिक दृष्टि से अनुसन्धान करें।

कुछ भी हो, किन्तु यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि इन्द्रभूति गौतम सत्य के महान् शोधक थे। अपना सब कुछ भूलकर वह भगवान् के चरणों में ही सर्वतोभाव से समर्पित हो गए थे।

उक्कमेण सेसा   उत्क्रमेण शेषा   — पृ० ६

'अनुक्रम और उत्क्रम' । अनुक्रम का अर्थ है, नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः बढ़ना तथा उत्क्रम का अर्थ है ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः उतरना । अनुक्रम को (In serial order) कहते हैं तथा उत्क्रम को (In the upward order) कहते हैं ।

अनुत्तरोपपातिकदशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में दस कुमारों के देवलोक सम्बन्धी उपपात — जन्म (Rebirth) का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है —

जालि मयालि उपजालि पुरुषसेन तथा वारिषेण अनुक्रम से—विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित और सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुए ।

दीर्घदन्त सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुआ ।

शेष चार उत्क्रम से उत्पन्न हुए, जैसे कि—अपराजित में लष्टदन्त जयन्त में वेहल्ल वैजयन्त में वेहायस विजय में अभय ।

उक्त दश कुमारों के सम्बन्ध में शेष वर्णन (The rest the same as in the first lesson) प्रथम अध्ययन में वर्णित जालिकुमार के वर्णन के समान समझ लेना चाहिए ।

लट्ठदन्त पृ० ८

१ इस नाम का उल्लेख प्रथम वर्ग में भी आ चुका है । वहाँ माता धारिणी तथा पिता श्रेणिक है और उपपात अपराजितविमान में बताया है । द्वितीय वर्ग में भी लष्टदन्त नामका उल्लेख आता है और वहाँ भी माता धारिणी तथा पिता श्रेणिक ही है, तथा उपपात वैजयन्त विमान में बताया है । अब यहाँ यह प्रश्न होता है कि क्या यह लष्टदन्त किसी एक ही व्यक्ति का नाम है या भिन्न व्यक्ति का नाम है ? एक व्यक्ति का नाम होने पर किसी भी तरह संगति नहीं बैठ सकती । एक व्यक्ति का प्रसंग-प्रसंग उपपात नहीं हो सकता । और संख्या प्रथम वर्ग की १ और इस वर्ग की १३ नामों मिलकर २३ होनी चाहिए यह भी एक व्यक्ति मानने पर कैसे हो सकता है ? 'श्रमण भगवान् महावीर' के लेखक पुरातत्त्ववेत्ता आचार्य कल्याण विजय जी ने अपनी उक्त पुस्तक के पृ० ६१ पर तीर्थङ्कर जीवन वाले प्रकरण में लिखा है कि "श्रेणिक की उपर्युक्त घोषणा का बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ा । अन्यान्य नागरिकों के अतिरिक्त जालिकुमार, मयालि उवयालि पुरुषसेन वारिषेण दीर्घदन्त लष्टदन्त वेहल्ल वेहास अभय दीर्घसेन महासेन लष्टदन्त गूढदन्त शुद्धदन्त हल्ल द्रुम द्रुमसेन महाद्रुमसेन सिंह, सिंहसेन महासिंहसेन तथा पूर्णसेन-श्रेणिक के इन तेईस पुत्रों और नन्दा नन्दामती नन्दोत्तरा नन्दश्रेणिया मरुया सुमरुता महामरुता मरुदेवा भद्रा सुभद्रा सुजाता सुमना और भूतदत्ता नाम की श्रेणिक की तेरह रानियों ने प्रव्रजित होकर भगवान् महावीर के श्रमण संघ में प्रवेश किया' । अस्तु, विभिन्न स्थलों पर आया लष्टदन्त नाम किसी एक व्यक्ति का न होकर भिन्न व्यक्ति का होने से ही पूर्वोक्त उल्लेख संगति पा सकता है ।

इस सम्बन्ध में विशेष गम्भीरता से सोचने पर जो संगति मालूम हुई है वह इस प्रकार है —

प्राकृत शब्द के संस्कृत में भिन्न भिन्न उच्चारण हो सकते है 'कय' का स० कज, कच, कृत । 'कइ' का कपि, कवि । 'पुण्ण' का पुण्य अथवा पूर्ण । इसी प्रकार 'लट्ठदन्त' शब्द के भिन्न-भिन्न उच्चारण होना असगत नही । जैसे कि लष्टदन्त, राष्ट्रदान्त। लष्टदन्त का अर्थ है—मनोहर दात वाला अर्थात् जिसके दात लट्ठ-सुन्दर है वह। दूसरे उच्चारण राष्ट्रदान्त का अर्थ है, जिसने राष्ट्र का दमन किया हुआ है अर्थात् जिसने राष्ट्र-देश को अपने वश मे किया हुआ है । एक नाम 'पुण्णसेण' भी आता है, जिस प्रकार उसके पुण्यसेन अथवा पूर्णसेन ऐसे दो उच्चारण असङ्गत नही, इसी प्रकार प्रस्तुत प्रथम वर्ग मे और द्वितीय वर्ग मे आए हुए लट्ठदन्त शब्द के लष्टदन्त तथा राष्ट्रदान्त ऐसे भिन्न-भिन्न उच्चारण असगत नही, प्रत्युत सगत और विशेष समुचित हैं। इस प्रकार विचार करने से लट्ठदन्त नामके दो व्यक्ति की सभावना की जा सकती है और इसी तरह से प्रस्तुत मे सङ्गति भी हो सकती है ।

इसके सम्बन्ध मे एक दूसरी युक्ति भी है, वह यह है —

पिता का नाम तो एक श्रेणिक ही ठीक है, परन्तु माताएं इन दोनो की अलग-अलग हो सकती है । यद्यपि दोनो की माता का नाम धारिणी मूलपाठ मे दिया हुआ है, परन्तु ये धारणी नाम वाली दो रानिया हो सकती है, श्रेणिक राजा के कई रानिया थी, यह तो निर्विवाद है, तो उसमे दो रानियो का समान नाम भी होना कोई असगत नही। वर्तमान मे भी कई कुटु बो मे ऐसा होना बहुत सम्भवित है। हमारे एक परिचित पजाबी जैन घराने मे दो भाइयो की पत्नियो का एक ही नाम 'निर्मला' है, तब एक बडी निर्मला और एक छोटी निर्मला-ऐसा विभाग करके व्यवहार चलाया जाता है । इसी प्रकार राजा श्रेणिक की समान नाम वाली दो रानिया मान लेने से प्रथम वर्ग के लट्ठदन्त की माता अन्य धारिणी थी और द्वितीय वर्ग के लट्ठदन्त की माता कोई दूसरी धारिणी थी—ऐसा समझलेने पर एक जैसा नाम पुत्रो का हो और माताए अलग-अलग हो, यह समाधान भी किसी प्रकार से असगत नही, बल्कि सुसगत और सुसभव है । अथवा एक धारिणी के ही लट्ठदत नाम के दो पुत्र हो सकते है। तात्पर्य यह कि किसी भी प्रकार मे दो लट्ठदत होने चाहिएँ ।

इस प्रकार विचार करने पर मूलपाठ मे समान नाम आने पर भी असगति नही रहेगी।

विशेषज्ञ इस सम्बन्ध मे अन्य कोई युक्ति उपस्थित करेंगे, तो उसका स्वागत होगा ।

गुण-सिलए : गुण-शिलक – पृ० ८

'गुण-शिलक' शब्द मे शिलक का 'शि' ह्रस्व है, यह ध्यान मे रहे। 'गुण शिल' अथवा 'गुण-शिलक' शब्द का अर्थ इस प्रकार होना चाहिए

'गुणप्रधान शिल यत्र तत् गुणशिलकम्' । 'शिल' अर्थात् खेत मे पडे हुए अनाज के कणो को—दानो को—एकत्रित करना ।

जो लोग त्यागी, भिक्षु, मुनि और सन्यासी होते है, उन मे कुछ ऐसे भी होते है, कि वे अनाज के जो दाने खेत मे स्वत गिरे हुए मिलते है, उनको ही एकत्रित करके अपनी आजीविका निर्दोष रूप में चलाते रहते हैं ।

इस प्रकार की चर्या से साधु संन्यासी का बोझ समाज पर कम पड़ता है। गुण प्रधान जिस चर्या मिलता हो वह 'गुण शिलक' है। शिल के द्वारा जीवन चलाने का नाम 'ऋत' है।

शिल द्वारा अपना संयमी जीवन व्यतीत करने वाले कणाद नाम के एक ऋषि हो गए हैं। उनका 'कणाद' नाम 'कणों' को—अनाज के दानों को एकत्रित करके 'अद' खाने वाला यथार्थ है।

'उञ्छः शिलं तु ऋतम्' —अमर कोश ६ वैश्य वर्ग काण्ड २ श्लोक २।

'कणिशाद्यर्जनं शिलम् ऋतं तत्।' —अभिधान मर्त्य का श्लोक ८६५–८६६।

'गुणशिल' शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति इस प्रकार भी की जा सकती है, 'गुणाः शिरसि यस्मिन् वा तत् गुणशिर'। इसका प्राकृत रूप गुणसिल सहज सिद्ध है।

काकन्दी – पृ० १२

जितशत्रु राजा की राजधानी। घोर तपस्वी धन्य अनगार की जन्म भूमि।

यह उत्तर भारत की प्राचीन और प्रसिद्ध नगरी थी। भगवान् महावीर के समय में इस नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था।

काकन्दी नगरी के बाहर 'सहस्राम्रवन' नाम का एक सुन्दर उद्यान था। भगवान् का समवसरण यहीं पर लगा था। धन्य अनगार की दीक्षा भी इसी उद्यान में हुई थी।

वर्तमान[1] में गोरखपुर से दक्षिण-पूर्व तीस मील पर और नूनखार स्टेशन से दो मील पर यहीं कहीं काकन्दी रही होगी।

सहस्राम्रवन – पृ० १२

सहस्राम्रवन। आगमों में इस उद्यान का प्रचुर उल्लेख मिलता है। काकन्दी नगरी के बाहर भी इसी नाम का एक सुन्दर उद्यान था जहाँ पर धन्यकुमार और सुनक्षत्रकुमार की दीक्षा हुई थी।

सहस्राम्रवन का उल्लेख निम्नलिखित नगरों के बाहर भी आता है —

१ काकन्दी के बाहर।
२ गिरनार पर्वत पर
३ काम्पिल्य नगर के बाहर
४ पाण्डु मथुरा के बाहर
५ मिथिला नगरी के बाहर
६ हस्तिनापुर के बाहर-आदि

१ आचार्य कल्याण विजय जी

जितशत्रु राजा पृ० १२

शत्रु को जीतने वाला। जिस प्रकार बौद्ध जातको मे प्राय ब्रह्मदत्त राजा का नाम आता है, उसी प्रकार जैन-ग्रन्थो मे प्राय जितशत्रु राजा का नाम आता है। जितशत्रु के साथ प्राय धारिणी का भी नाम आता है। किसी भी कथा के प्रारम्भ में किसी न किसी राजा का नाम बतलाना, कथाकारो की पुरातन पद्धति रही है।

इस नाम का भले ही कोई राजा न भी हो, तथापि कथाकार अपनी कथा के प्रारम्भ में इस नाम का उपयोग करता है। वैसे जैन साहित्य के कथा- ग्रन्थो में जितशत्रु राजा का उल्लेख बहुत आता है। निम्नलिखित नगरो के राजा का नाम जितशत्रु बताया गया है—

	नगर	राजा
१	वाणिज्य ग्राम	जितशत्रु
२	चम्पा नगरी	,,
३	उज्जयनी	,,
४	सर्वतोभद्र नगर	,,
५	मिथिला नगरी	,,
६	पाचाल देश	,,
७	आमल कल्पा नगरी	,,
८	सावत्थी नगरी	,,
९	वाणारसी नगरी	,,
१०	आलभिया नगरी	,,
११	पोलासपुर	,,

भद्रा सार्थवाही – पृ० १२

काकन्दी नगरी के वासी धन्यकुमार और सुनक्षत्रकुमार की माता।

काकन्दी नगरी में भद्रा सार्थवाही का बहुमान था। भद्रा के पति का उल्लेख नही मिलता।

भद्रा के साथ लगा सार्थवाही विशेषण यह सिद्ध करता है, कि वह साधारण व्यापार ही नही, अपितु सार्वजनिक कार्यों मे भी महत्त्वपूर्ण भाग लेती होगी और देश तथा परदेश मे बडे पैमाने पर व्यापार-यात्रा करती रही होगी।

पचधात्री – पृ० १३

शिशु का लालन-पालन करने वाली पाच प्रकार की धाय माताए।

शिशु पालन भी मानव जीवन की एक कला है। एक महान दायि[illegible] है। किसी शिशु का जन्म देने मात्र से ही माता पिता का गौरव
गौरव शिशु के लालन पालन की पद्धति पर से ही आक

प्राचीन साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में राजघरानों में और समग्र घरों में शिशु-पालन के लिए धाय माताएं रखी जाती थी जिन्हें धात्री कहा जाता था। धाय माताएं पांच प्रकार की हुआ करती थीं—

१ क्षीरधात्री – दूध पिलाने वाली।
२ मज्जनधात्री – स्नान कराने वाली।
३ मण्डनधात्री – साज-सिङ्गार कराने वाली।
४ क्रीडा धात्री – खेल-कूद कराने वाली मनोरंजन कराने वाली।
५ अंकधात्री – गोद में रखने वाली।

महाबल – पृ० १४

बल राजा का पुत्र। सुदर्शन सेठ का जीव महाबलकुमार।
हस्तिनापुर नामक नगर था। वहाँ का राजा बल और रानी प्रभावती थी।
एक बार रात में अर्धनिद्रा में रानी ने देखा—
"एक सिंह आकाश से उतर कर मुख में प्रवेश कर रहा है।
सिंह का स्वप्न देखकर रानी जाग उठी और राजा बल के शयन-कक्ष में जाकर स्वप्न सुनाया। राजा ने मधुर स्वर में कहा—

"स्वप्न बहुत अच्छा है। तेजस्वी पुत्र की तुम माता बनोगी।'
प्रात: राजसभा में राजा ने स्वप्नपाठकों से भी स्वप्न का फल पूछा।

स्वप्नपाठकों ने कहा— 'राजन्! स्वप्नशास्त्र में ४२ सामान्य और ३ महास्वप्न हैं इस प्रकार कुल ७२ स्वप्न कहे हैं।
तीर्थङ्करमाता और चक्रवर्तीमाता ३ महास्वप्नों में से इन १४ स्वप्नों को देखती है

१ गज
२ वृषभ
३ सिंह
४ लक्ष्मी
५ पुष्पमाला
६ चन्द्र
७ सूर्य
८ ध्वजा
९ कुम्भ
१ पद्मसरोवर
११ समुद्र
१२ विमान
१३ रत्नराशि
१४ निर्धूम अग्नि

राजन्! प्रभावती देवी ने यह महास्वप्न देखा है। अत इसका फल अर्थला भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा।

कालान्तर मे पुत्र जन्म हुआ, जिसका नाम महावलकुमार रखा गया।

कलाचार्य के पास ७२ कलाओ का अभ्यास करके महावल कुशल हो गया।

आठ राजकन्याओ के साथ महावल कुमार का विवाह किया गया। महावलकुम भौतिक सुखो मे लीन हो गया।

एक बार तीर्थङ्कर विमलनाथ के प्रशिष्य धर्मघोष मुनि हस्तिनापुर पधारे। उपदे सुन कर महाबल को वैराग्य हो गया। धर्मघोष मुनि के पास दीक्षा लेकर वह श्रमण बन गय भिक्षु बन गया।

महाबल मुनि ने १४ पूर्व का अध्ययन किया। अनेक प्रकार का तप किया। १२ व का श्रमण-पर्याय पालकर, काल के समय काल करके ब्रह्मलोक कल्प मे देव बना।

—भगवती शतक ११, उद्देश ११

कोणिक – पृ० १४

राजा श्रेणिक की रानी चेल्लणा का पुत्र, अगदेश की राजधानी चम्पा नगरी व अधिपति। भगवान् महावीर का परम भक्त।

कोणिक राजा एक प्रसिद्ध राजा है। जैनागमो मे अनेक स्थानो पर उसका अने प्रकार से वर्णन आता है।

भगवती, औपपातिक, और निरयावलिका में कोणिक का विस्तृत वर्णन है।

राज्य-लोभ के कारण इसने अपने पिता श्रेणिक को कैद मे डाल दिया था। श्रेणि की मृत्यु के बाद कोणिक ने अगदेश मे चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाया था।

अपने सहोदर भाई हल्ल और विहल्ल से हार और सेचनक हाथी को छीनने के लि इसने अपने नाना चेटक से भयकर युद्ध भी किया था। कोणिक—चेटकयुद्ध प्रसिद्ध है।

—जैनागम कथा कोष

जमाली – पृ० १४

वैशाली के क्षत्रियकुण्ड का एक राजकुमार था। एक बार भगवान् क्षत्रियकुण्ड ग्रा मे पधारे। जमाली भी उपदेश सुनने को आया।

वापिस घर लौट कर जमाली ने अपने माता-पिता से दीक्षा की अनुमति मागी माता घबरा उठी, वह मूच्छित हो गई।

जमाली के माता-पिता उसको उसके सकल्प से हटा नही सके। अपनी आठ पत्निय का त्याग करके उसने पाच-सौ क्षत्रिय कुमारो के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली।

जमाली ने भगवान् के सिद्धान्त विरुद्ध प्ररूपणा की थी।

—भगवती शतक ९, उद्देश ३३

थावच्चापुत्र – पृ० १४

द्वारिका नगरी की समृद्ध थावच्चा गाथापत्नी का पुत्र जिसने एक सहस्र मनुष्यों के साथ भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा ग्रहण की।

भगवान् नेमिनाथ द्वारिका के बाहर नन्दन वन में पधारे। थावच्चा ने माता की अनुमति से भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा महोत्सव श्रीकृष्ण ने किया।

थावच्चा ने १४ पूर्व का अध्ययन किया। अनेक प्रकार का तप किया।

अन्त में सर्व प्रकार के दुःखों का अन्त करके सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गया।

—ज्ञाता सूत्र अध्ययन ५

कृष्ण – पृ० १४

कृष्ण वासुदेव। माता का नाम देवकी पिता का नाम वासुदेव था।

कृष्ण का जन्म अपने मामा कंस की कारा में मथुरा मे हुआ था।

जरासन्ध के उपद्रवों के कारण श्रीकृष्ण ने व्रज-भूमि को छोड़ कर सुदूर सौराष्ट्र में जाकर द्वारिका की रचना की।

श्रीकृष्ण भगवान् नेमिनाथ के परम भक्त थे। भविष्य मे वह अमम नाम के तीर्थङ्कर होंगे। जैन साहित्य में संस्कृत और प्राकृत उभय भाषाओं में श्री कृष्ण का जीवन विस्तृत रूप से मिलता है।

द्वारिका के विनाश हो जाने पर श्रीकृष्ण की मृत्यु जराकुमार के हाथो से हुई।

श्री कृष्ण का जीवन महान् था।

—जैनागम कथा कोष

महावीर – पृ० १५

वर्तमान अवसर्पिणीकाल चक्र के २४ तीर्थङ्करों में चरम तीर्थङ्कर।

आगम-साहित्य और आगमोत्तर ग्रन्थों में भगवान् महावीर के इतने नाम प्रसिद्ध हैं—

१ वर्धमान २ महावीर ३ महाश्रमण ४ चरम तीर्थङ्कर ५ सन्मति ६ अतिवीर ७ विदेहदिन्न ८ वैशालिक ९ ज्ञातपुत्र १० देवार्य ११ दीर्घतपस्वी आदि।

भगवान् महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथीय परम्परा के श्रमणोपासक थे।

भगवान् महावीर का जन्म वैशाली में जो आज पटना से २७ मील उत्तर में बसाढ़ या बसाढ़ नाम से प्रसिद्ध है हुआ था।

महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ माता त्रिशलादेवी ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन थे। महावीर की माता त्रिशलादेवी वैशाली-गणतंत्र के प्रमुख राजा चेटक की बहिन थी।

माता पिता के दिवंगत हो जाने के बाद नन्दिवर्धन से अनुमति लेकर तीस वर्ष की अवस्था में महावीर ने दीक्षा ग्रहण की।

१२॥ वर्षों तक घोर तप किया। कठोर साधना की। केवल-ज्ञान पाकर ४२ वर्षों तक जन-कल्याण के लिए धर्म देशना दी। ७२ वर्ष की आयु में पावापुरी में भगवान् का परिनिर्वाण हुआ।

बौद्ध साहित्य के ग्रन्थो मे भगवान् महावीर को दीर्घतपस्वी, निगण्ठ नातपुत्त कहा गया है।

थेर – पृ० १८

स्थविर, वृद्ध। शास्त्रो मे तीन प्रकार के स्थविर कहे गए है—

(१) वय स्थविर—६० वर्ष की आयु वाला भिक्षु वय स्थविर है।

(२) प्रव्रज्या स्थविर—२० वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला भिक्षु प्रव्रज्या स्थविर है।

(३) श्रुत स्थविर—स्थानाग, समवायाग आदि के ज्ञाता भिक्षु को श्रुत स्थविर कहते हैं।

सिलेस-गुलिया : श्लेष-गुटिका – पृ० २४

"श्लेष' शब्द का वास्तविक अर्थ है—चिपकना, चोटना। जब किसी कागज के दो टुकडो को चिपकाना होता है, तब गोद आदि का उपयोग किया जाता है।

मालूम होता है, कि प्रस्तुत प्रसङ्ग मे 'श्लेष' शब्द का अर्थ गोद आदि चिपकाने वाली वस्तु है। श्लेष' अर्थात् गोद की गुटिका अर्थात् वटिका (वत्ती)। इसका अर्थ हुआ—गोद की लम्बी-सी-वत्ती। यह अर्थ यहां पर सगत बैठता है। किन्तु कफ की गुटिका वाले अर्थ को यदि प्रस्तुत मे लागू करना हो तो इस प्रकार घटाना चाहिए—जैसे कफ की कोई लबी वत्ती-सी गुटिका कही पडी हुई फीकी-सी होती है, वैसे ही धन्यकुमार के होठ हो गए थे। इस प्रकार धन्यकुमार के ओठो के साथ श्लेष गुटिका की उपमा दी गई है। प्रस्तुत मे 'श्लेष' के अन्य अर्थ के लिए जो सुझाव दिया गया है, उसका कारण है कि श्लेष शब्द कफ अर्थ का वाचक नही मिलता।

अमर कोषकार ने तथा आचार्य हेमचन्द्र ने कफ के जो पर्याय बताएं है, वे इस प्रकार हैं—

मायु पित्त कफ श्लेष्मा।

—द्वि० का० १६ मनुष्य वर्ग श्लोक ६२

पित्त मायु कफ श्लेष्मा बलाश स्नेहभू खट।

—अभि० मर्त्य का० श्लोक ४६२

आचार्य हेमचन्द्र के कथनानुसार—कफ, श्लेष्मन्, बलाश, स्नेहभू, और खट—ये पाच नाम श्लेष्म के हैं। इस मे 'श्लेष' शब्द नही आया है।

धन्य अनगार : धन्यदेव – पृ० ३०

मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति से जो प्राणी स्वर्ग मे जाता है, उसका वहाँ कोई नया नाम नही होता है। परन्तु उसके पूर्व जन्म का ही नाम वहाँ स्वर्ग मे भी चलता रहता है।

धन्य मुनि का नाम धन्य देव पडा। दर्दु र मर कर देव हुआ, तो उसका नाम भी दर्दु र देव हुआ। मालूम होता है, कि देव जाति मे मानव जाति के समान नामकरण-सस्कार की खास कोई नई प्रथा नही है। वहाँ पर मनुष्य-कृत अथवा पशुयोनि-प्रसिद्ध नाम का ही प्रचलन है।

चाउरंत चक्कवट्टी — पृ० ३४

सारी पृथ्वी चार दिशाओं में आ जाती है।
'चाउरंत' शब्द का अर्थ है—चार अन्त। जिस प्रकार चक्रवर्ती राजा क्षत्रिय धर्म का उत्तम रीति से पालन करता हुआ उस धर्म से चारों दिशाओं पर विजय पाता है, सारी पृथ्वी पर अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित करता है, उसी प्रकार भगवान् महावीर ने चार अन्त वाले—मनुष्यगति, देवगति, तिर्यञ्चगति और नरक गति रूप—संसार पर वास्तविक उत्तम क्षात्र धर्म का पालन करते हुए उस उत्तम क्षात्र धर्म से अपने अन्तरंग वैरी राग-द्वेष तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि को जीत कर पूर्णरूप से विजय पा लिया है।

यहाँ पर एक महाभोगी चक्रवर्ती के साथ एक महायोगी (भगवान् महावीर) की तुलना की गई है। भगवान् धर्म के चक्रवर्ती हैं, अतः यह उपमा यहाँ पर दी गई है।

वाणिज्य ग्राम — पृ० ३४

मगध देश का एक प्राचीन नगर। यह नगर वैशाली के पास गण्डकी नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित एक समृद्ध व्यापार-मण्डी थी।

भगवान् महावीर के भक्त श्रावक आनन्द यहीं के रहने वाले थे।

वर्तमान में बसाढ़ पट्टी के समीप वाला—बनिया नाम ही संभवतः प्राचीन काल का 'वाणिज्य ग्राम' नगर होगा।

साकेत — पृ० ३४

भारत का एक प्राचीन नगर। यह कोशल देश की राजधानी था।

आचार्य हेमचन्द्र ने साकेत, कोशल और अयोध्या—इन तीनों को एक ही कहा है।

साकेत के समीप ही 'उत्तरकुरु' नाम का एक सुन्दर उद्यान था, उसमें 'पाशामृग' नाम का एक यक्षायतन था।

साकेत नगर के राजा का नाम मित्रनन्दी और रानी का नाम श्रीकान्ता था।

"वर्तमान में फैजाबाद जिला में फैजाबाद से पूर्वोत्तर छह मील पर सरयू नदी के दक्षिणी तट पर स्थित वर्तमान अयोध्या के समीप ही प्राचीन साकेत होगा।"

हस्तिनापुर — पृ० ३४

भारत के प्रसिद्ध प्राचीन नगर का नाम। महाभारत काल में कुरुदेश का यह एक सुन्दर एवं मुख्य नगर था।

भारत के प्राचीन साहित्य में इस नगर के अनेक नाम उपलब्ध हैं।

१ हस्तिनी, २ हस्तिनपुर, ३ हस्तिनापुर, ४ गजपुर[२] आदि।

---

१ आचार्य कल्याण विजय जी
२ जैन सूत्रों में कुरु जनपद की राजधानी का नाम गजपुर लिखा है। अतः गजपुर और हस्तिनापुर ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

आज-कल हस्तिनापुर का स्थान मेरठ से २२ मील पूर्वोत्तर और बिजनौर से दक्षिण-पश्चिम के कोण मे बूढी गगा के दक्षिण कूल पर माना गया है।

षष्ठ (छट्ठ) – पृ० १६

छह टक नही खाना। पहले रोज एकासन करना, दूसरे दिन एव तीसरे दिन उपवास करना, तथा चौथे रोज एकासन करना, इस प्रकार छह वार न खाने को छट्ठ (बेला) कहते हैं।

इसी प्रकार अट्ठम मे आठ वार नही खाना, इसको तेला कहते हैं।

चार वार नही खाने को चउत्थ भत्त, अर्थात् उपवास कहते हैं।

इस व्याख्या से प्रतीत होता है, कि उस युग मे धारणा और पारणा करने की पद्धति का प्रचलन नही था, जो आज वतमान मे चल रही है। वर्तमान मे जो धारणा और पारणा की पद्धति है, वह तपस्या की अपेक्षा से तथा चउत्थभत्त छट्ठभत्त इत्यादिक की जो व्याख्या शास्त्र मे विहित है, उसकी अपेक्षा मे भी शास्त्रानुकूल नही है।

आयंबिल – पृ० १६

'आयबिल' शब्द एक सामासिक शब्द है। इस मे दो शब्द है—आयाम और अम्ल। आयाम का अर्थ है– माड अथवा ओसामरण। अम्ल का अर्थ है—खट्टा (चतुर्थ रस)। इन दोनो को मिला कर जो भोजन बनता है, उसको आयामाम्ल, अर्थात् आयबिल कहते हैं। ओदन, उडद और सत्तू– इन तीन अन्नो से आयबिल किया जाता है। यह जैन परिभाषा है।

प्रवचनसारोद्धार मे 'आयाम' शब्द के स्थान मे 'आचाम' शब्द का प्रयोग किया गया है।

आचार्य हरिभद्र आयामाम्ल, आचामाम्ल एव आचाम्ल शब्दो का प्रयोग करते हैं।

उक्त पुरानी व्याख्याओ से ज्ञात होता है, कि आयबिल मे ओदन (चावल), उडद और सत्तू—इन तीन अन्नो का भोजन के रूप मे प्रयोग होता था, और स्वाद जय की दृष्टि से यह उपयुक्त था।

आज तो प्राय आयबिल मे बीसो चीजो का उपयोग किया जाता है। यह किस प्रकार शास्त्रविहित है? यह विचारने योग्य है।

स्वाद-जय की भावना करने वाले विवेकी साधको को शास्त्रीय व्याख्या पर ध्यान दना आवश्यक है।

परन्तु उक्त शब्द मे 'अम्ल' शब्द का जो प्रयोग किया गया है, और उसका जो चतुर्थ रस अर्थ बताया गया है, उसका भोजन के साथ क्या सम्बन्ध है, यह मालूम नही पडता। सशोधक विद्वान् इस पर विचार करे।

क्योकि आयबिल मे भोजन की सामग्री मे खटाई का कोई सम्बन्ध मालूम नहीं पडता, अत अम्ल शब्द से जान पडता है, कि श्री हरिभद्र सूरि से भी पुराने जमाने में आयबिल में कदाचित् छाछ का सम्बन्ध रहा हो?

बौद्ध ग्रन्थ मज्झिम निकाय क १ में महासीहनाद सुत्त मे बुद्ध की कठोर तपस्या का वर्णन है। उस में बुद्ध को आयामभक्षी अथवा आचामभक्षी कहा गया है। वहाँ आयाम शब्द का अर्थ माड किया गया है। इस प्राचीन उल्लेख से मालूम होता है कि आयाम का मांड अर्थ था और आचामभक्षी कह जाने वाले तपस्वी केवल मांड का ही पीते थे। जैन परिभाषा म आयाम शब्द से प्रारम्भ उड़द एवं सत्तू लिया गया है। परन्तु ये तीन आयाम के अर्थ मे नही लगते। याद रखना चाहिए कि हरिभद्र आदि आचार्यों ने आयाम का मुख्य अर्थ मांड ही बताया है।

—देखा आवश्यक निर्युक्ति वृत्ति गाथा १९ २

—आचार्य सिद्धसेन कृत प्रवचन सारोद्धार वृत्ति

—आचार्य देवेन्द्र कृत श्राद्ध प्रतिक्रमण वृत्ति

संसृष्ट – पृ १६

दाता भोजन कर रहा हो और मुनिराज गोचरी के लिए दाता के याने गृहस्थ के घर पहुँचे तब भोजन करते हुए दाता का हाथ साग दाल चावल वगैरह से या उसके रसादार अन्न से लिप्त हो—संसृष्ट हो और वह दाता उसी संसृष्ट हाथ से भिक्षा देने को तत्पर हो तो ऐसे भिक्षान्न को संसृष्ट अन्न कहते है। प्रस्तुत मे धन्य अनगार को ऐसे संसृष्ट हाथ से दिये हुए अन्न के लेने का संकल्प है।

उज्झित – पृ० १६

जो खाद्य तथा पेय चीज फेंकने लायक है जिसको कोई भी खाना-पीना पसन्द नही करता ऐसे प्रासुक खाद्य या पेय को उज्झित कहा जाता है।

उच्च, नीच मध्यम कुल – पृ० १६

प्रस्तुत म उच्च नीच या मध्यम शब्द कोई जाति या वंश की अपेक्षा से विवक्षित नही है मात्र संपत्तिमान कुल को लोग उच्चकुल कहते है, संपत्तिविहीन कुल को नीच कहते है और साधारण कुल को मध्यम कहा जाता है। जाति या वंश की विवक्षा होती तो प्रस्तुत मे मध्यम शब्द की संगति नही हो सकती। जैन शासन म आचार तथा तत्त्व की दृष्टि म जातीयता पर्याश्रित उच्च नीच भाव सम्मत नही है। अनुशासन गुणमूलक है किसी भी जाति का व्यक्ति जैन धर्म का आचरण कर सकता है। प्रस्तुत मे उच्च नीच और मध्यम कुल मे भिक्षा भ्रमण का जो उल्लेख है वह साधनशील मुनिराज के जाति निरपेक्ष होकर सब कुलो मे गोचरी जाने के सामान्य नियम का सूचक है और सनातन जैनशासन की परिधि मे ही यह प्रणाली रही है।

विलमिव पन्नगभूएणं – पृ० १६

जैसे सर्प अपने भूगर्भ बिल मे जब किसी भी स्थान को लेता है प्रवेश करता है तब उसको कहीं भी चबाता नही है किन्तु निगल जाता है। ठीक उसी प्रकार स्वादेन्द्रिय के ऊपर जय पाने के इच्छुक मुनिराज प्राप्त प्रासुक खाद्य चीज को मुख मे डालकर ही निगल जाते है परन्तु मुख के एक भाग से दूसरे भाग की तरफ ले जाकर चबाते नही अर्थात् स्वाद का रस न लेने के कारण वे निगल जाते है। ऐसा अभिप्राय 'बिलमिव पन्नग' इत्यादि वाक्य का है।

आज-कल हस्तिनापुर का स्थान मेरठ से २२ मील पूर्वोत्तर और बिजनौर से दक्षिण-पश्चिम के कोण में बूढी गगा के दक्षिण कूल पर माना गया है।

षष्ठ (छट्ठ) – पृ० १६

छह टक नही खाना। पहले रोज एकासन करना, दूसरे दिन एव तीसरे दिन उपवास करना, तथा चौथे रोज एकासन करना, इस प्रकार छह बार न खाने को छट्ठ (बेला) कहते है।

इसी प्रकार अट्ठम मे आठ बार नही खाना, इसको तेला कहते है।

चार बार नही खाने को चउत्थ भत्त, अर्थात् उपवास कहते हैं।

इस व्याख्या से प्रतीत होता है, कि उस युग मे धारणा और पारणा करने की पद्धति का प्रचलन नही था, जो आज वर्तमान मे चल रही है। वर्तमान मे जो धारणा और पारणा की पद्धति है, वह तपस्या की अपेक्षा मे तथा चउत्थभत्त छट्ठभत्त इत्यादि की जो व्याख्या शास्त्र मे विहित है, उसकी अपेक्षा मे भी शास्त्रानुकूल नही है।

आयबिल – पृ० १६

'आयबिल' शब्द एक सामासिक शब्द है। इस मे दो शब्द है—आयाम और अम्ल। आयाम का अर्थ है– माड अथवा ओसामरण। अम्ल का अर्थ है—खट्टा (चतुर्थ रस)। इन दोनो को मिला कर जो भोजन बनता है, उसको आयामाम्ल, अर्थात् आयबिल कहते हैं। ओदन, उडद और सत्तू– इन तीन अन्नो से आयबिल किया जाता है। यह जैन परिभाषा है।

प्रवचनसारोद्धार मे 'आयाम' शब्द के स्थान मे 'आचाम' शब्द का प्रयोग किया गया है।

आचार्य हरिभद्र आयामाम्ल, आचामाम्ल एवं आचाम्ल शब्दो का प्रयोग करते हैं।

उक्त पुरानी व्याख्याओ से ज्ञात होता है, कि आयबिल मे ओदन (चावल), उडद और सत्तू—इन तीन अन्नो का भोजन के रूप मे प्रयोग होता था, और स्वाद जय की दृष्टि से यह उपयुक्त था।

आज तो प्राय आयबिल मे बीसो चीजो का उपयोग किया जाता है। यह किस प्रकार शास्त्रविहित है? यह विचारने योग्य है।

स्वाद-जय की साधना करने वाले विवेकी साधको को शास्त्रीय व्याख्या पर ध्यान देना आवश्यक है।

परन्तु उक्त शब्द मे 'अम्ल' शब्द का जो प्रयोग किया गया है, और उसका जो चतुर्थ रस अर्थ बताया गया है, उसका भोजन के साथ क्या सम्बन्ध है, यह मालूम नही पडता। सशोधक विद्वान् इस पर विचार करे।

क्योकि आयबिल मे भोजन की सामग्री मे खटाई का कोई सम्बन्ध मालूम नही पडता, अत अम्ल शब्द से जान पडता है, कि श्री हरिभद्र सूरि से भी पुराने जमाने मे आयबिल मे कदाचित् छाछ का सम्बन्ध रहा हो?

इसमें विशेप विचारने की बात यह है कि जो मुनिराज धन्य अनगार की तरह उग्रतपस्वी व घोरतपस्वी होते हैं, वे ही इस प्रकार खाद्य पदार्थ के कँवल को बिना चबाए निगल सकते हैं। इस प्रकार निगला हुआ भोजन उस उग्रतपस्वी मुनि को तपस्या के कारण हानि नहीं करता। परन्तु वर्तमान मे जो ऐसे उग्रतपस्वी मुनि नही हैं, यदि वे भी हठात् धन्य मुनि का अनुकरण करने की चेष्टा करे तो उनको खाए हुए अन्न का पाचन नही होगा और वे बीमार हो जावेंगे, अत इस आदर्शवाद को ध्यान मे रख कर कोई हठात् ऐसा प्रयत्न करेगा तो कदाच सयम की ही विराधना हो जायगी। वस्तुत वतमान मे धन्य मुनि का आदर्श केवल शास्त्र में ही सुशोभित रहने जैसा है। शक्ति-हीनो द्वारा धन्य अनगार जसे महान् कठोर साधकों का, भावुकता वश किया गया अनुकरण, लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक करता है। ग्रास को ठीक तरह चबाकर, विवेक पूर्वक आहार करने से भी स्वादेन्द्रिय का जय जरूर हो सकता है। शास्त्र में लिखा भी है कि—"जय भु जतो पाव कम्म न बधइ।"

सामाइयमाइयाइं – पृ० १८

इस वाक्य से सूचित होता है कि सामायिक से लेकर ग्यारह अगों का अध्ययन किया। ग्यारह अगो में प्रथम नाम आचार अंग सूत्र का आाता है, अत प्रस्तुत में 'आयारमाइयाइ' अर्थात्, आचार अग वगैरह ग्यारह अगो का निर्देश होना उचित है, तब 'सामाइयमाइयाइ' ऐसा निर्देश क्यो? इसका समाधान इस प्रकार है—

आचार अग के प्रथम वाक्य मे ही अनारभ की चर्चा है और इवर सामायिक मे भी अनारभ की चर्चा तथा चर्या प्रधान है, अत आचार अग तथा सामायिक दोनो में असाधारण साम्य है, एकरूपता है, अत 'आयारमाइयाइ' के स्थान मे 'सामाइयमाइयाइ' ऐसा निर्देश सुसगत है। अथवा मुनिराज प्रथम सामायिक स्वीकार करता है और उस सामायिक के स्वीकार में अनारभ धर्म प्ररूपक आचार अग का भी समावेश हो जाता है, इस कारण भी ऐसा निर्देश असगत प्रतीत नहीं होता। अथवा 'सामाइय' शब्द मे 'साम + आजाइय' ऐसे दो शब्द समझने चाहिएँ और फिर उनका द्वन्द्व समास करके आर्षत्वात् सस्वर 'जा' का लोप करना जरूरी है। अत साम + आजाइय से 'सामाइय' ऐसा पद सिद्ध होगा, उसका अर्थ-साम याने सामायिक तथा आजाइय याने आचारागसूत्र। आचाराग की नियुक्ति में जिस गाथा मे आयार, आचाल इत्यादि शब्दो को 'आचार' का पर्याय बताया गया है, उसी गाथा मे 'आजाति' शब्द को भी आचार अङ्ग का पर्याय बताया है। अत 'सामाइय' का अर्थ सामायिक और आचारअंग इत्यादि ग्यारह अग, बराबर सघटित होता है। इस प्रकार योजना करने से 'सामायिक' आ जावेगा और आचारअंग भी आ जावेगा, और 'आइय' शब्द मे आदिक, अर्थात् दूसरे सब शेष ग्यारह अग भी आ जावेंगे तथा इस प्रकार कोई विप्रतिपत्ति भी न रहेगी।

[प्रथम वर्ग]

क्रम	व्यक्ति	माता	पिता	स्थान	पुत्र	दीक्षा	तप	संलेखना	स्थान	विमान	मोक्ष
१	जालिकुमार	धारिणी	श्रेणिक	राजगृह	८ प	१६ व	गुण	एकमास	विपुल	विजय	महा
२	मयालि								„	वैजयन्त	
३	उपयालि									जयन्त	
४	पुरुषसेन									अपराजित	
५	वारिषेण								„	सर्वार्थसिद्ध	
६	दीर्घदन्त					१२				„	
७	लष्टदन्त									अपराजित	
८	वेहल्लकुमार	चेलना						„	„	जयन्त	„
९	वेहायसकुमार					५	„			वैजयन्त	
१	अभयकुमार	नन्दादेवी								विजय	

[द्वितीय वर्ग]

क्रम	व्यक्ति	माता	पिता	स्थान	गुरु	दीक्षा	तप	सलेखना	स्थान	विमान	मोक्ष
१	दीर्घसेन	धारिणी	श्रेणिक	राजगृह	भ०म०	१६ व०	गुण०	एकमास	विपुल	विजय	महा०
२	महासेन	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३	लष्ट दन्त	,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	विजय	,,
४	गूढदन्त	,	,,	,	,,		,,	,,	,,	,,	,,
५	शुद्धदन्त	,	,,	,,	,	,,	,,	,,	,,	जयन्त	,,
६	हल्लकुमार	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,	,,	,,	,,
७	द्रुम	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	अपराजित	,,
८	द्रुमसेन	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
९	महाद्रुमसेन	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	सर्वार्थसिद्ध	,,
१०	सिंह	,,	,,	,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
११	सिंहसेन	,,	,,	,	,	,,	,,	,,	,	,	,,
१२	महासिंहसेन	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१३	पुण्यसेन	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

[तृतीय वर्ग]

क्रम	व्यक्ति	माता	पिता	स्थान	गुरु	दीक्षा	तप	सलेखना	स्थान	विमान	मोक्ष
१	धन्यकुमार	भद्रा		काकन्दी	भ०म०	९ मास	गुण०	एकमास	विपुल	सर्वार्थसिद्ध	महा०
२	सुनक्षत्र	,,		,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३	ऋषिदास	,,		राजगृह	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४	पेल्लक	,,		,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,
५	रामपुत्र	,,		साकेत	,,	,	,,	,,	,,	,,	,,
६	चन्द्रिकुमार	,,		,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,
७	पृष्टिमातृक	,,		वाणिज्य ग्राम	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८	पेढालपुत्र	,,		,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
९	पोट्टिल्ल	,,		हस्तिनापुर	,,	,,	,,	,,	,	,,	,,
१०	वेहल्लकुमार	,,		राजगृह	,,	६	,,	,,	,,	,,	,,

१० उववाय—

देव और नारकी का जन्म, देव और नारकी की उत्पत्ति।

११ उज्झिय धम्मिय—

जो वस्तु छोडने योग्य हो, जो वस्तु ग्रहण करने के योग्य न हो।

१२ काउस्सग्ग—

कायोत्सर्ग, देह के ममत्व का परित्याग। शरीर की क्रिया का परित्याग।

१३ गुणरयण तवोकम्म—

गुण-रत्न तप, १६ मास का एक तप, जिसमे प्रथम मास में एक उपवास, दूसरे में दो और क्रम से बढ़ते-बढते १६वें मे १६ उपवास होते हैं।

१४ गुत्तबभयारी—

मन, वचन और काय को सयत करने वाला ब्रह्मचारी भिक्षु।

१५ छट्ठ—

बेला, दो उपवास एक साथ करना।

१६ जयण घडण-जोग-चरित्त—

यत्न, यतना, विवेक, प्राणि रक्षा करना। घटन प्रयत्न, उद्यम, पुरुषार्थ करना। योग, सबध, मिलाप, जोडना। जिसमें यतना और उद्यम है, इस प्रकार के चारित्र वाला व्यक्ति।

१७ तव—

तप, जिससे कर्मों का क्षय होता है। अनशन आदि छह बाह्य तप और विनय आदि छह आभ्यन्तर तप।

१८ थेर—

स्थविर, वृद्ध। शास्त्रो में तीन प्रकार के स्थविर कहे गए हैं—

(१) वय स्थविर—६० वर्ष की आयु वाला भिक्षु वय स्थविर है।
(२) प्रव्रज्या स्थविर—२० वष की दीक्षा पर्याय वाला भिक्षु प्रव्रज्या स्थविर है।
(३) श्रुत स्थविर—स्थानांग, समवायाग आदि के ज्ञाता भिक्षु को श्रुतस्थविर कहते हैं।

१९ पत्त-चीवर—

पात्र-भाजन, चीवर-वस्त्र।

२० परिणिव्वाण वत्तिय—

साधु के देह त्याग के उपलक्ष्य में कायोत्सर्ग आदि का किया जाना।

२१ पोरिसी—

पौरुषी, एक पहर का समय पुरुप-प्रमाण छाया-काल।

९२. संयम—

मनोनिरोध, इन्द्रिय-निग्रह, १७ प्रकार का संयम, प्राणि-रक्षा करना।

९३ समुदाण—

समुदान, उच्च, नीच और मध्यम कुल की भिक्षा, गोचरी।

९४ सज्झाय—

स्वाध्याय, शास्त्र का पठन, परावर्तन आदि।

९५ समण—

श्रमण, श्रमशील, मुनि, निर्ग्रन्थ, हिंसादि पापों से दूर रहने वाला।

९६ संलेहणा—

संलेखना, शारीरिक और मानसिक रूप से कषाय आदि आत्म-विकारों का क्षय करना। मरण से पूर्व अनशनपूर्वक संथारा करना।

९७ सामण्ण परियाग—

श्रामण्य पर्याय, साधुता का दीक्षा काल, संयम-वृत्ति।

९८ समोसरण—

समवसरण, तीर्थंकर का पधारना। १२ प्रकार की सभा का मिलना। जहाँ भगवान् विराजित होते हैं, वहाँ देवों द्वारा की गई रचना।

९९ सागरोवम—

सागरोपम, दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम काल का विभाग, जिसके द्वारा नारकी और देवता का आयुष्य नापा जाता है।

अव्यय-पद-संकलना

अ—

१	अ	और
२	अंत	अन्त, अवसान, मृत्यु
३	अंतिए	समीप, पास
४	अण्णया	अन्यदा, किसी समय
५	अलं	समर्थ, पूर्ण रूप से
६	अवि	भी
७	अह	अथ, पक्षान्तर, आरम्भ
८	अहापज्जत्त	पर्याप्त
९	अहापडिरूव	यथायोग्य
१०	अहासुहं	सुख से, आराम से

आ—

११	आणुपुव्वीए	अनुक्रम से

इ—

१२.	इ, इति	समाप्ति, पूर्ण
१३	इमेयारूवे	इस प्रकार

उ—

१४.	उच्चं	ऊँचे
१५	उड्ढं	ऊँचे
१६	उप्पि	ऊपर

ए—

१७	एवं	इस प्रकार
१८	एव	ही, निश्चय
१९	एवामेव	इसी प्रकार

अमृत-कण

: १ :

दव्वेण भावेण वा जं अप्पणो परस्स वा
उवकारकरणं तं सव्वं वेयावच्चं ।

—निशीथ चूर्णि ४, ३७४

द्रव्य और भाव से अपना स्वयं का तथा पर का जो उपकार किया जाता है, वह सब का सब वैयावृत्य, सेवा ही है ।

: २ :

पमाय-मूलो बन्धो भवति ।

—निशीथ चूर्णि ४, ४८६

बन्ध का मूल प्रमाद है । जहाँ प्रमाद है, वहाँ कर्म बन्ध अवश्य है

: ३ :

अज्जव अकरमाणस्स संजम-सोही ण भवति ।

—निशीथ चूर्णि , २६६

विना ऋजुता के, विना सरलता के संयम की संशुद्धि नहीं हो सकती ।

: ४ :

आवत्तीए जहा अप्पं रक्खन्ति,
तहा अण्णो वि आवत्तीए रक्खियव्वो ।

—निशीथ चूर्णि ४, १८६

जिस प्रकार आपत्ति काल मे स्वयं अपनी रक्षा की जाती है, उसी प्रकार आपत्ति काल मे दूसरो की भी रक्षा की जानी चाहिए ।